समता कथा माला पुष्पांक-15

कफन की कड़ी कसौटी

vkpk;Z Jhukus'k

çdk'kd

Jh vf[ky Hkkjro"khZ; lk/kdsrhZ tSu la?k

lerk Hkou] cdkusj ¼jkt-½

❖ समता कथा माला पुष्पांक-15

❖ कफन की कड़ी कसौटी

❖ आचार्य श्री नानेश

❖ प्रथम संस्करण : अक्टूबर, 2012, 3100 प्रतियाँ

❖ मूल्य : 10/-

❖ अर्थ-सहयोगी :
श्रीयुत राजेन्द्रजी मेहता
जयपुर (राज.)

❖ प्रकाशक :
श्री अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, आचार्य श्री नानेश मार्ग
श्री जैन पी.जी. कॉलेज के सामने, नोखा रोड़,
बीकानेर-334401(राज.)
फोन: 0151-2270261, 3292177, 0151-2270359 (Fax)
visit us : www.shriabsjainsangh.com
e-mail : absjsbkn@yahoo.co.in

❖ आवरण सज्जा व मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर
दूरभाष : 9314962475

प्रकाशकीय

महिमा मण्डित स्व. आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के रतलाम चातुर्मास में सन् 1988 में उन्हीं के तत्वावधान में जैन सिद्धांत विश्वकोष का लेखन कार्य प्रारम्भ हुआ। उसी के कथा खण्ड में अनेक कथाओं का भी संयोजन हुआ है। कुछ तकनीकी स्थितियों से उक्त कोष का प्रकाशन कार्य अब तक संभव नहीं हो पाया। कथा से आबाल वृद्ध को सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है। हर वर्ग उसे रूचि से पढ़ता है। इसलिए कोष में संयोजित कथाओं के प्रकाशन का निर्णय लिया गया। इस लेखन-सम्पादन में श्री शांतिलालजी मेहता कुम्भागढ़, चित्तौड़गढ़ के अथक परिश्रम को भी नहीं भुलाया जा सकता।

उपरोक्त पुस्तक समता कथा माला पुष्पांक-15 **कफन की कड़ी कसौटी ?** के रूप में आप सभी के समक्ष प्रस्तुत है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अर्थ सहयोगी के रूप में श्रीयतु राजेन्द्रजी मेहता जयपुर (राज.) ने जो सहयोग प्रदान किया है। उसके लिये संघ आपका आभारी है।

राजमल चौरड़िया
संयोजक - साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

तप, त्याग, सेवा, दया एवं स्वाध्याय जिन व्यक्तियों का आभूषण होता है उन सदाचारी व्यक्तियों का जीवन युगों-युगों तक प्रत्येक प्राणी मात्र के लिये प्रेरक होता है और वे सभी प्राणी मात्र का मार्ग प्रशस्त करते है। ऐसे ही सद्गुणों से सम्पन्न प्रतिष्ठित, धार्मिक समाजसेवी के रूप में विख्यात सुश्रावक श्री अभयसिंहजी मेहता का जन्म दिनांक 5.2.1933 को मेवाड़ की धरा किशनगढ़ हरमाड़ा में श्रीमती बिलमकंवरजी की रत्नकुक्षी से हुआ था। आप बचपन से ही अनुशासन प्रिय व मेहनतशील व्यक्तित्व के धनी पुरुष थे। आपका व्यवसाय हेतु किशनगढ़ से जयपुर पधारना हुआ जहाँ पर अथक परिश्रम, गुणवता, कुशलता व अनुशासन के साथ अपने व्यवसाय को शीर्ष तक पहुँचाया।

व्यवसाय के साथ-साथ धर्म के प्रति आपका गहरा लगाव था। आप आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान आचार्य श्री रामेश के प्रति अटूट श्रद्धानिष्ठ श्रावक थे। जहाँ पर भी आचार्य श्री का विराजना होता वहाँ पर आप दर्शन सेवा, लाभ हेतु सपरिवार पधाार जाते। आपने 55 वर्ष की आयु में शीलव्रत अंगीकार कर लिया था। आपके द्वारा बताये हुए मार्गों पर चलकर सम्पूर्ण परिवार सेवा एवं सत्कर्मों के अनेक कार्य निरुपित कर रहे है। 70 वर्ष की आयु

में दिनांक 17.09.2003 को आपका देहावसान हो गया जो सम्पूर्ण परिवार के लिये अत्यंत क्षतिपूर्ण है जिसे कभी भी पूर्ण नहीं किया जा सकता। लेकिन आपके द्वारा बताये गये आदर्श आज भी परिवार में सभी परिजनों में सजीवता से स्थापित है। आपकी धर्मसहायिका श्रीमती अनोपकंवरजी मेहता, श्रद्धानिष्ठ, धर्मनिष्ठ एवं कर्त्तव्यनिष्ठ महिलारत्न थी। जिन्होंने सम्पूर्ण परिवार को एक सूत्र में बाधे रखने के साथ-साथ आपके प्रत्येक कार्य में कंधे से कंधा मिलाकर आपको सहयोग प्रदान किया। चारित्रात्माओं के प्रति आपकी आगाध श्रद्धा थी। आप प्रवचन सुनने, दर्शन सेवा लाभ हेतु निरन्तर तत्पर रहती थी। आपने वर्षों से आजीवन चौविहार का प्रत्याख्यान किया व नित्य प्रतिदिन सामायिक व स्वाधयाय करती रहती थी साथ ही साथ आपने अपने जीवनकाल में एक मासखमण, पन्द्रह, दस, नौ, अठाई की तपस्या के अतिरिक्त एकवर्षीय तप आराधना भी सम्पन्न की। दिनांक 5.11. 2008 को आपका देहावसान हो गया। सरलता, सादगी तप एवं वात्सल्य की प्रतिमूर्ति श्रीमती मेहताजी का सम्पूर्ण जीवन त्यागमय में रहा है।

सौभाग्यशाली मेहता दम्पति के एक पुत्र व 7 पुत्रियाँ है। आपके सुपुत्र श्री राजेन्द्रजी मेहता श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन संघ के राष्ट्रीय मंत्री एवं जयपुर श्रीसंघ के अध्यक्ष पद पर अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे है। संतति से प्राप्त गुणों से आप भी अपने पिता की तरह सहज, सौम्य, मिलनसार, उदारमना एवं हुक्मसंघ के प्रति सर्वेतोभावेन समर्पित शासननिष्ठ है। आपके जयपुर संघ में अध्यक्षीय कार्यकाल के दौरान जयपुर में समता भवन निर्माण का सपना साकार हुआ। जिसे जयपुर संघ के इतिहास में सदैव याद रखा जायेगा। आपने अपने व्यवसाय को लगनशील एवं प्रमाणिकता के आधार पर आगे बढ़ाते हुए जयपुर ही नहीं अपितु अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर ख्याति पहुँचाई हैं।

आपकी पुत्रवधु श्रीमती सूर्यकान्ता मेहता धर्मपत्नी श्री राजेन्द्रजी मेहता बहुत ही सुसंस्कारित एवं धार्मिक महिलारत्न है। आपकी चारित्रत्माओं की सेवा में विशेष रूचि रहती है। आपने अनेकों तप, त्याग सम्पन्न करते हुए 3 बार मासखमण, 11 एवं अठाई की तपस्या से अपने आत्मा को ही निर्मल नहीं बल्कि सम्पूर्ण परिवार को भी इस ओर प्रेरित करने हेतु प्रयत्नशील रही है।

श्री अभयसिंहजी के सुपौत्र ऋषि मेहता भी बहुत ही सुसंस्कारित एवं धार्मिक है जो समाज के प्रत्येक कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते है व अपने परिवार की यश एवं कीर्ति को आगे बढ़ा रहे है। आपका विवाह शास्त्रों के जानकर केकड़ी निवासी श्री लालचंदजी नाहटा की पौत्री खुशबू के साथ सम्पन्न हुआ। स्वयं श्री लालचंदजी नाहटा की आचार्य प्रवर श्री रामलालजी म.सा. के प्रति आगाध श्रद्धा थी और आपकी संतती के यही गुण आपकी पौत्री में भी विद्यमान है। श्री अभयसिंहजी के तीन छोटे भाई श्री सम्पत्तसिंहजी, श्री धनपतसिंहजी एवं श्री प्रेमराजजी मेहता भी धार्मिक सुसंस्कारों से ओत-प्रोत है जिनका सम्पूर्ण परिवार

आचार्य श्री रामेश के प्रति निष्ठावान व श्रद्धान्वत् है। श्री सम्पत्तजी मेहता त्यागमय जीवन व्यतीत कर रहे है। लगभग 13 वर्षों से निरन्तर एकासन की तप आराधना चल रही है एवं प्रतिदिन 7 द्रव्यों का उपयोग करते है।

ऐसा शासननिष्ठ मेहता परिवार अर्थ उपार्जन नहीं अपितु अर्थ विसर्जन में भी विश्वास रखता है, आपका सम्पूर्ण परिवार धर्मनिष्ठ व शासननिष्ठ है जो हुक्मसंघ के नवम् पट्टधर तरुण तपस्वी, प्रशांतमना आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. के संदेशों को अपने जीवन में धारण करते हुए पूर्ण निष्ठा के साथ संघ एवं शासन की सेवा कर रहे है। आपके सुपुत्र द्वारा अपने माता-पिता की स्मृति में उपरोक्त साहित्य मुद्रण हेतु जो सहयोग प्रदान किया वह अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय है।

अनुक्रमणिका

रतनपाल की प्राप्ति	:	9
कफन की कड़ी कसौटी	:	25
और यह आठवीं पत्नी!	:	40
तेरह प्राणियों का हत्यारा	:	53
चारों में श्रेष्ठ कौन	:	62
हल्की-सी व्यंग्यभरी हँसी	:	74
मृत्युः रत्नों के ढेर पर	:	89
रानी, तुम्हारे पुत्र होगा !	:	101
मैं चोर हूँ !	:	113

रतनपाल की प्राप्ति

प्रिये, जीवन में अधिक ताप और संताप अच्छा नहीं होता। अपने कर्म फल के अनुसार जिस प्रकार की परिस्थितियाँ इस जीवन में मिलती हैं, उन्हीं में जीवन को सन्तोष के साथ व्यतीत करना चाहिए। जो प्राप्त नहीं है उसके लिए अपने भावों को विकृत बनाना कतई श्रेयस्कर नहीं। यह समझकर तुम शान्ति धारण करो कि हम दोनों को पुत्र की प्राप्ति का योग नहीं है- सेठ जिनदत्त ने अपनी धर्मपत्नी भानुमती को सद्विचारों को प्रेरणा देने का प्रयास किया।

पुरितमाल नगर के इस श्रेष्ठिदम्पत्ति का जीवन अत्यन्त ही धर्ममय था। इनके पास धर्म की सम्पदा थी तो विपुल वैभव की सम्पदा भी। नगर के सर्वाधिक धनाढ्य होते हुए भी वे दोनों पति-पत्नी सदा मानव कल्याण एवं संघ-समाज की सेवा भक्ति के शुभ कार्यों में लगे रहते थे। सभी प्रकार की उपलब्धियों के उपरान्त भी उन्हें अपना एक अभाव बहुत खलता रहता था।

जिनदत्त तो उस अभाव को विवेक के सद्भाव में लेता था। किन्तु भानुमती उस अभाव से कुछ अत्यधिक ही दुःखानुभव करती थी। वह अभाव था-सन्तान पुत्र का अभाव। सेठानी उसे सह नहीं पाती थी और रात-दिन रोती कलपती रहती थी।

पति की प्रेरणा स्वाभाविक होते हुए भी भानुमती उसे सह नहीं पाई और बरबस उसकी रुलाई उमड़ पड़ी। झरती हुई आँखों से उसने पति की ओर देखा और कहना शुरू किया- प्राणनाथ, मैं आपके सद्विचार का विरोध नहीं करती, किन्तु यह बात अवश्य कहना चाहती हूँ कि एक माता के मन की अपरिमित पीड़ा की थाह आप नहीं ले पाते। स्त्रीत्व की सार्थकता मातृत्व में होती है, क्योंकि अपनी निज की रचना के रूप में सन्तान पर अपनी अथाह ममता फैलाकर वह विशिष्ट आनन्द का अनुभव करती है। उस आनन्द से अछूती रहकर क्या मैं प्रसन्न रह सकती हूँ ? निःसंदेह सबको अपने में प्राप्त प्रसन्न रहना चाहिए, किन्तु कोई-कोई प्राप्य भी ऐसा होता है, जिसका अभाव सहा नहीं जाता।

धैर्य रखो भानु, मैं तुम्हारी पीड़ा को समझता हूँ, किन्तु पीड़ा को पीड़ा रूप में अनुभव करते रहने पर न तो पीड़ा घटेगी और न ही प्राप्य प्राप्त हो सकेगा, फिर

अकारथ पीड़ा से मन को क्यों काला बनाया जाए ? हर समय रोने कलपने से प्राप्य की प्राप्ति तो नहीं होगी न ? फिर मन और तन को काला-दुबला बनाने की हानि क्यों झेलती हो ? कल्पना करो, सन्तान का योग नहीं है और समझो, सन्तान हो भी गई, पर सन्तान सुख का योग नहीं है तो क्या कोई अन्य शक्ति इस योग का निर्माण कर सकती है ? फिर भी मैं नहीं कहता कि सन्तान नहीं होगी, किन्तु धीरज को छोड़कर व्यर्थ में दु:खी होते रहना तो कत्तई उचित नहीं है-जिनदत्त ने प्रेमपूर्वक कहा।

प्राप्य के पीछे न दौड़कर प्राप्त से सन्तोष रखने की चेष्टा मैं अवश्य करूंगी, किन्तु क्या करुँ, मेरा जैसे स्वयं पर कोई नियंत्रण ही नहीं रह गया है ? हर समय आँखों के समाने बालाकृति मंडराती रहती है और घेरे रहती हैं बालक्रीड़ाओं को निरखते रहने की अतुल आकांक्षाएँ। यह परिदृश्य मेरे हटाये नहीं हटता, सो किसी तरह मेरी सूनी गोद भर जाए, तभी मैं सन्तोष पा सकूंगी। कहते-कहते भानुमती का गला रुंध गया।

तुम विश्राम करो, प्रिये, कामना करता हूँ कि तुम्हें सन्तोष मिले- जिनदत्त ने उसे विश्राम प्राप्ति हेतु किसी गृह कार्य में संलग्न हो जाने की सलाह दी।

❖ ❖ ❖

एक दिन जिनदत्त और भानुमती दोनों अपनी हवेली के गवाक्ष में बैठे हुए प्रेमालाप कर रहे थे। बात करते-करते यकायक भानुमती चुप हो गई और नीचे मार्ग पर अपलक दृष्टि से देखने लगी-देखने भी इस तरह लगी, जैसे वह उस देखने में पूरी तरह खो गई हो।

जिनदत्त ने भी उसे नहीं छेड़ा और स्वयं भी झुककर उस तरफ देखने लगा, जिस तरफ भानुमती एकटक देख रही थी। वह दृश्य देखते ही जैसे उसके हृदय में भी खलबली मच गई, वह भी अपनी दृष्टि उस पर से नहीं हटा सका। दृश्य था- पड़ोसिन भद्र महिला अपने सुन्दर-सलौने शिशु की छोटी-सी अंगुली अपने हाथों में थामे उसे पैरों के बल चलाना सिखा रही है। बच्चा मीठी-मीठी किलकारियाँ मार रहा था और अपनी तुतलाती हुई बोली में अपनी माँ को न जाने क्या-क्या पूछ रहा था। माँ कभी उसकी पीठ पर थपकी देती तो कभी उसकी अंगुली को खींचकर उसे आगे से आगे चलाती। बच्चा चार कदम चल देता तो उसे गोद में उठाकर चूमती और इठलाती।

उधर एक माँ हर्ष की उत्ताल तरंगों में बह रही थी तो इधर माँ बनने की अभिलाषिणी भानुमती धार-धार आँसू बहाने लगी और आहें भरती हुई इतना ही बोली-

एक यह सौभाग्यवती माता है और एक मैं ? अपने दुर्भाग्य पर कितना रोऊँ ? शान्ति का एक क्षण तक मेरे लिए दुर्लभ हो गया है।

जिनदत्त ने और कुछ नहीं किया। उसने उसके बहते हुए आँसुओं को पौंछा और स्नेह स्पर्श के साथ आश्वासन दिया कि वे उसकी कामनापूर्ति के लिए कोई कारगर उपाय जरूर करेंगे। सेठ का हृदय भी विगलित हो उठा। सेठानी वह दृश्य देखती रही और सेठ वहाँ से उठकर चला गया।

वह बहुत देर तक चिन्ताग्रस्त रहकर विचार करता रहा- अपनी पत्नी की इस पीड़ा को कैसे मिटाए वह ? उसका प्रतिक्षण दु:खी रहना उससे देखा नहीं जाता। सन्तान प्राप्ति के सारे उपाय निष्फल रहे हैं, फिर क्या करे वह ? उसकी अपार सम्पत्ति भी किस काम की, जो दोनों के जीवन को सुखी न रख सके ?

विचार क्रम में जिनदत्त को अपने कुल देवता की स्मृति हो आई, क्यों नहीं उनका आह्वान करके पुत्रेच्छापूर्ति का निवेदन उनसे किया जाए ? कम से कम वे अपने अवधिज्ञान से इतना तो बता ही सकेंगे कि हमारे जीवन में सन्तान प्राप्ति का योग है भी या नहीं। किसी निश्चयात्मक स्थिति का संकेत मिल जाए तो रात-दिन

की पीड़ा पर कोई अंकुश लगाया जा सके। वह ध्यान तप में बैठकर अपने कुल देवता की आराधना करने लगा।

वत्स, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हुआ- बोलो, तुमने मेरा आह्वान क्यों किया है ? कुल देवता ने प्रकट होकर पूछा।

देव, आप तो जानते ही हैं कि हमारी पुत्र पाने की इच्छा अत्यन्त उद्दाम हो रही है- सेठानी तो रात-दिन रोती-कलपती ही रहती है। क्या हमारी इच्छा पूरी होगी ? जिनदत्त ने अनुनय-विनय के साथ कहा।

हाँ, तुम्हारी इच्छा तो पूरी होगी, पर वह एक तरह से नहीं पूरी होने लायक ही रहेगी।

यह विरोधाभास कैसा, देव ?

ऐसा है कि तुम्हारे एक पुत्र का योग है, लेकिन वह संकटपूर्ण है। उस पुत्र के गर्भ में आते ही तुम्हारी सारी सम्पति नष्ट हो जाएगी और तुम भिक्षुक तुल्य हो जाओगे।

क्या ऐसे दुर्भाग्यवाला होगा हमारा पुत्र ?

उस पुत्र के स्वयं का भाग्य तो महान् प्रतापी होगा, किन्तु उसका आगमन अवश्य ही तुम्हारे लिए परम दुर्भाग्यपूर्ण सिद्ध होगा।

हमारे लिए जो भी होगा, हम सह लेंगे। हम तो उसकी बाल-लीलाएँ देख-देख कर और उसे गोदी में खिला-खिलाकर ही अपने इस जीवन को आनन्दित बना लेंगे। सचमुच मेरी सेठानी तो धन्य हो जाएगी।

वत्स, वह भी संदेहपूर्ण है।

यह क्यों ? कहा जिनदत्त ने, किन्तु तभी देवता अन्तघनि हो गया।

जिनदत्त का हृदय देवता के अन्तिम वाक्य से आशंकित हो उठा, किन्तु पुत्र होने के हर्षमय संवाद के समक्ष वह आशंका टिकी नहीं और वह भागकर भानुमती के पास पहुँचा।

ऐसी क्या बात हो गई श्रेष्ठिवर, जो इतनी तेजी से भागते हुए से चले आ रहे हैं ? पति के चेहरे पर हर्ष की चमक देखकर पत्नी ने भी हर्षित होते हुए पूछा।

बात कुछ ऐसी ही है प्रिये, सुनोगी तो खुशी से बाग-बाग हो उठोगी।

सच, फिर बताने में देर क्यों कर रहे हैं ?

मैंने कुल देवता की आराधना की थी और उनसे अपने पुत्रोत्पत्ति के विषय में पूछा था।

फिर क्या बताया उन्होंने ?

यह कि हमारे एक पुत्र होगा।

बधाई आपको, आपने मेरा जीवन धन्य कर दिया- माँ की ममता से नहला दिया। किन्तु सुनो, एक बात और है।

वह भी सुना दीजिए, खुशी की ही हो होगी।

सेठ का चेहरा उतर आया, फिर भी जो भविष्यवाणी देवता ने की थी उसे सुनाना तो था ही। वह बोला- किन्तु इस पुत्र के जन्म से पूर्व हमारी सम्पूर्ण सम्पत्ति नष्ट हो जाएगी और हम भिक्षुकतुल्य बन जाएंगे तथा जन्म के बाद भी दुर्दशा बनी रहेगी।

आप चिन्ता न करें। पुत्र का भोला-भाला चेहरा हमारा सबसे बढ़कर धन होगा, दूसरा धन न भी रहा तो क्या फर्क पड़ता है ?

किन्तु.....

छोड़िए उस किन्तु को, मैं तो कल्पनाओं के आनन्द सागर में अभी से गोते लगाने लगी हूँ। भानुमती अपार आनन्द में विचरण करने लगी।

❖ ❖ ❖

देवता की भविष्यवाणी फलने लगी। भानुमती कुछ समय बाद ही गर्भवती हुई, पर उसके साथ ही जिनदत्त का व्यापार चौपट होने लगा। घाटे पर घाटा, लेनदारों के तकाजे और देनदारों के नकारे-स्थिति को

सम्हाल पाना ही मुश्किल हो गया। नौवें माह तक तो सारी चल-सम्पत्ति ही नष्ट नहीं हुई, सारी अचल सम्पत्ति भी चली गई। रोज का भोजन जुटा पाना भी कठिन हो गया। इस दशा में प्रसव व्यय का प्रबन्ध करना भी सेठ को सर्वथा अशक्य लगने लगा।

यह संसार ऐसा ही है। यहाँ के सारे सम्बन्ध स्वार्थ पर टिके हुए रहते हैं। आप के पास धन सम्पत्ति है तो सुख के समय सभी सगे बने हुए दिखाई देते हैं लेकिन वही धन सम्पत्ति नष्ट हो जाए तो वे ही सगे ऐसे पराये हो जाते हैं, जैसे आपके साथ उनका कभी परिचय ही नहीं हुआ हो। जिनदत्त को भी ऐसा ही कटु अनुभव हो रहा था। अपने होने वाले पुत्र के प्रसव व्यय लायक धन राशि भी उसके पास थी नहीं, उधार देने से सभी ने इनकार कर दिया और कुछ मूल्यवान वस्तु रखकर उधार लाने जैसी कोई वस्तु घर में नहीं थी। पर प्रसव तो होगा ही और व्यय के लिए धन चाहिए ही। तब क्या करे वह ?

उसके मन में एक विचार आया कि इस गर्भस्थ बालक को गिरवी रखकर ही आवश्यक धन उधार लिया जाए। उसे लगा, इसके सिवाय अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। किन्तु जहाँ भी यह बात कहकर वह उधार मांगता,

वहाँ हँसी का पात्र बनता। किन्तु एक सेठ उसे मिल ही गया, जिसने उसकी बात मान ली- वह था मन्मन सेठ। वह अपार सम्पत्तिशाली था, किन्तु था पुत्रहीन। उसने सोचा- इस उधार से तो उसे पुत्र ही मिल जाएगा। यह दरिद्री कभी ऋण चुका न सकेगा और उसका पुत्र मेरा हो जाएगा, किन्तु ऐसी शर्त इससे साफ-साफ लिखा लेनी चाहिए।

मन्मन सेठ बोला- देख भाई जिनदत्त, तुझ पर दया लाकर धन तो मैं दे रहा हूँ परन्तु एक शर्त तुझे माननी और लिखकर देनी होगी।

मजबूरी सोचने का मौका ही कहाँ देती है ? धन मिल रहा है, यही बहुत है, ऐसा सोचकर जिनदत्त ने खुशी से सिर हिलाते हुए कहा- मुझे आपकी हर शर्त मंजूर है। बताइए, कौनसी शर्त लिखकर दूँ ?

जिनदत्त, लिखो कि तुमने इस धन के बदले में अपने होने वाले पुत्र को मेरे यहाँ गिरवी रखा है और यदि पुत्र के जन्म के सत्ताइस दिन तक यह ऋण ब्याज सहित मुझे नहीं चुका पाए तो मैं तुम्हारे पुत्र को अपने अधिकार में ले लूंगा।

जैसा मन्मन सेठ ने कहा, वैसा ही जिनदत्त ने लिखकर दे दिया और धन लेकर भागता-भागता घर

पहुँचा। उसने तुरन्त प्रसव सम्बन्धित सारी व्यवस्था की।

यथा समय प्रसव हुआ और भानुमती ने एक बालक को जन्म दिया जो रूप, लावण्य और कान्ति से ही नहीं, सभी सुलक्षणों से भी युक्त था। जो भी उसे देखता उसे वह सुहावना लगता और वह उसे सराहता। माता और पिता की प्रसन्नता का तो कहना ही क्या ? वे तो उसी में मगन हो गए। बालक का नाम रखा गया रतनपाल।

यों हुई जिनदत्त और भानुमती के अति अधीर हृदयों को परम सांत्वना रूप रतनपाल की प्राप्ति।

देखते-देखते रतनपाल के जन्म के सत्ताइस दिन बीत गए। जिनदत्त तो भूल ही गया कि उसने सेठ को लिखकर कोई शर्त भी दी थी और उसकी अवधि समाप्त हो गई है। द्वार से मन्मन सेठ और उसके मुनीम के भीतर प्रवेश कर सामने आ जाने पर ही उसे याद आयी।

भाई जिनदत्त, तुम्हें अपना ऋण तो चुकाना ही होगा- चाहे धन दो या अपना नवजात पुत्र-सेठ ने धमका कर कहा।

मात्र सत्ताइस दिन का शिशु ले जाकर क्या करोगे, सेठ ? अभी तो वह माँ के दूध बिना जीवित भी

नहीं रह सकेगा। वह चार माह का हो जाए तब उसे ही ले जाइए, धन तो मेरे पास होगा नहीं- यह कहते हुए जिनदत्त की लाचार आँखें रो उठी।

मन्मन सेठ ने सोचा- बालक को बड़ा होने में खतरा है। इस आयु से पालने पर ही वह आगे चलकर सचमुच में अपने आपको हमारा ही बेटा मान लेगा। इस कारण दया दिखाना व्यर्थ है। वह बोला- बालक के पालन पोषण की तुम चिन्ता न करो, मेरे पास धन साधन सब है। इसी समय या तो धन दो या अपने पुत्र को मुझे सौंप दो।

जिनदत्त-भानुमती ने बहुत ही आजीजी की, किन्तु वह दुष्ट हृदय कहाँ मानने वाला था ? वह पुत्र को लेकर ही माना। माता-पिता दु:ख के दलदल में डूब गए। तब एक पल भी उन्हें वहाँ रहना नहीं सुहायां पड़ोस की भद्र महिला को एक सन्देश देकर वे दोनों वहाँ से दूर एक बसन्तपुर नगर में चले गए वे वहीं रहने लगे और लकड़ियाँ काट-बेच कर अपना पेट पालने लगे। यों रतनपाल प्राप्त होकर भी पुन: अप्राप्य बन गया।

❖ ❖ ❖

रतनपाल का स्वयं का भाग्य तो प्रतापी था ही। उसे मन्मन सेठ का धनसाधन ही नहीं, सेठ दम्पत्ति का पूर्ण प्रेम भी प्राप्त हुआ। उसने बालपन में उस दम्पत्ति के

हृदयों को खुशियाँ दी तो युवा होकर सेठ का व्यापार भार सम्हाल लिया।

एक दिन वह अश्वारोहण का अभ्यास करके घर लौट रहा था कि नगर के बाहर ही एक वृद्धा ने उसे रोका और हाथ दिखाकर घोड़े से नीचे उतरने का संकेत किया। वह उतर कर वृद्धा से पूछने लगा- माताजी, मेरे लिए क्या सेवा है ?

तुम रतनपाल हो न ?

हाँ, मन्मन सेठ का पुत्र मैं ही रतनपाल हूँ। मेरे से आपको कोई कार्य है ?

पुत्र, आज मैं अपना एक दायित्व पूरा कर देना चाहती हूँ।

कहिए- रतनपाल उत्सुक हो उठा।

रतनपाल, तुम मन्मन सेठ के पुत्र नहीं हो। वास्तव में तुम जिनदत्त सेठ के पुत्र हो- कहते हुए उस वृद्धा ने सारी कहानी उसे सुना दी और यह भी बता दिया- इस नगर को छोड़कर जब तुम्हारे दुःखी माता-पिता तुम्हारे जन्म के अठाइसवें दिन जा रहे थे तो उन्होंने यह संदेश तुम्हें तब सुनाने को कहा था, जब तुम युवक और समर्थ हो जाओ। मैंने आज अपना वह दायित्व पूरा कर लिया है।

रतनपाल तो किसी और ही दुनिया में चला गया था, अचानक चौंक कर बोला- यह सत्य किसी ने कभी मुझे बताया ही नहीं, अभी ही घर पर जाकर लड़ता हूँ।

ऐसा कत्तई मत करना पुत्र, मन्मन सेठ बहुत धूर्त है। तुम तो कोई उपाय निकाल कर अपने माता-पिता की खोज करो- न जाने किन कष्टों में वे अपना जीवन बिता रहे होंगे ?

अच्छा माता, मैं ऐसा ही करुंगा।

रतनपाल घर पहुँच कर अपने कक्ष में जाकर अनमना सा लेट गया और अपने माता-पिता को खोज निकालने की चिन्ता में डूब गया।

रतनपाल ने मन्मन सेठ को समझा दिया कि इस समय कालकूट तक व्यापारिक काफिला ले जाने में बहुत लाभ रहेगा। तब उसने सदल बल प्रस्थान कर दिया। यह सोचकर कि बीच के लम्बे मार्ग में वह अपने माता-पिता की भली प्रकार से खोज कर सकेगा।

किन्तु वाह री कर्मदशा, कालकूट (कोलकाता) पहुँचने तक भी रतनपाल को अपने माता-पिता भानुमती-जिनदत्त का कोई अता-पता नहीं चला।

उस समय कालकूट नरेश भीषण नेत्र पीड़ा से ग्रस्त था। सभी उपचार कर-कर के थक-हार गया था। उसने यह घोषणा भी करवा दी थी कि जो उसकी नेत्र

पीड़ा दूर कर देगा, उसे वह अपना आधा राज्य दे देगा तथा उसके साथ अपनी राजकुमारी रत्नवती का विवाह भी कराएगा। रत्नपाल नरेश के पास पहुँच गया। उसका शुभ कर्मोदय कि मंत्र के जाप तथा मंत्रित जल के सिंचन से नरेश की नेत्र पीड़ा शान्त हो गई। घोषणानुसार रतनपाल आधे कालकूट राज्य का राजा और रत्नवती का पति बन गया।

किन्तु रतनपाल को शान्ति कहाँ थी ? वह निष्क्रिय कैसे बैठा रहे, जब तक कि अपने माता-पिता को न खोज ले। उसने खोज में भ्रमण हेतु निकल जाने का निश्चय किया। रत्नवती ने भी साथ चलने का अति आग्रह किया, किन्तु यात्रा के कष्टों का वर्णन करते हुए उसने उसके आग्रह को टाल दिया।

रत्नवती अपने पति से विलग नहीं रहना चाहती थी। उसने अपनी इच्छा अपने पिता को जताई। पिता ने कहा- बेटी, दामाद की बात भी रख लेता हूँ और तुम्हारी इच्छा भी पूरी कर देता हूँ। मेरे पास एक उपाय है।

भीतर जाकर राजा एक गुटिका लाया और उसे पुत्री को देते हुए बोलो- इस गुटिका को सिर पर छुआने से तुम सुन्दर युवक बन जाओगी, फिर जब चाहोगी पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाओगी।

यों एक सुन्दर युवक रतनपाल के पास में गया और बोला- मैं भी इसी राज परिवार से हूँ। आप अकेले न रहें, इसके लिए खोज कार्य में मैं आपके साथ चलूंगा। ऐसा साथी पाकर रतनपाल प्रसन्न हो उठा। दोनों तब खोज में स्थान-स्थान पर भ्रमण करने लगे। अन्ततः वे बसन्तपुर पहुँचे और पूछने लगे कि यहाँ पुरिमाल से आया हुआ कोई परिवार रहता है? जिनदत्त और भानुमती का पता चल गया।

रतनपाल का दिल ऐसा भर आया कि पहले वह कुछ भी बोल नहीं सका। माँ-बाप के पाँवों में लौटते हुए वह इतना ही कह सका- मैं रतनपाल हूँ, आपका पुत्र।

शान्त होने पर सारी आप बीती सुनाई और रत्नवती के विवाह का उल्लेख आया तो रतनपाल यह देखकर चकित रह गया कि रत्नवती तो पास में ही खड़ी है और माता-पिता के चरण स्पर्श हेतु उत्सुक है। माता-पिता अपार हर्षित थे कि प्राप्य आज पूर्ण रूप से प्राप्त हो गया है।

स्त्रोत - रतनपाल चारित्र

सार - प्राप्त का सुख लें और प्राप्य के लिए प्रयास करें।

❑ ❑ ❑

कफन की कड़ी कसौटी

राजा हरिश्चन्द्र और रानी तारामती की कष्टों की कहानी इतनी प्रचलित है कि वह बच्चे-बच्चे के मुख पर है। सत्य जीवन-निष्ठा का सर्वोच्च मूल्य है, इसी कारण सत्य की रक्षा में जो अपने सर्वस्व का त्याग करता है, वह लोकप्रियता का सर्वोच्च स्तंभ बन जाता है। सत्य रक्षण में राजा हरिश्चन्द्र ने वही सर्वोच्च कीर्तिमान स्थापित किया है।

उसने सत्य को ऐसा धारा कि वह स्वयं सत्य रूप बन गया। उसका अनुपालन वह इतनी कठोरतापूर्वक करने लगा कि उसकी कीर्ति देवलोक तक फैल गई इन्द्र का सिंहासन उससे कम्पायमान हुआ, वह चौंका कि यह कौन मानव है जो अपनी गुण-कीर्ति में मेरे सिंहासन से भी ऊपर उठ गया है ? उसने तथ्य ज्ञात किया और अपना मस्तक राजा हरिश्चन्द्र के सत्यव्रत के सुदृढ़ अनुपालन के प्रति झुका दिया। उसने अपनी देव सभा में

इस आदर्श मानव की अतिशय सराहना भी की। इस सराहना को एक दुरात्मा देव सहन न कर सका और तुच्छभावों में बहता हुआ राजा हरिश्चन्द्र की कठोर परीक्षा लेने के लिए वह चल पड़ा।

❖ ❖ ❖

उस देव ने अपने दुष्ट भावों के कारण सच्चे सोने को निखालिस पीतल साबित कर देने के लिए उसे एक बार नहीं, कई बार अधिक से अधिक तपती हुई आग में डालना आरम्भ किया- यहाँ तक कि उस सत्य के अवतार को वह कफन की कड़ी कसौटी तक भी ले गया, लेकिन क्या हुआ ? हुआ वहीं जो तपने के बाद सोने का रूप होता है- राजा हरिश्चन्द्र कुन्दन रूप कीर्तिवान बन गया।

❖ ❖ ❖

गुरुदेव ! कुछ देवियाँ सारे तपोवन को उजाड़ रही हैं। लताओं पौधों को तोड़-भरोड़ रही हैं। पैरों तले उन्हें रौंद-रौंद कर हर्ष मना रही हैं। हमने उनको कितना ही समझाया पर वे सुनने को भी तैयार नहीं। वन-तपोवन को तहस नहस कर रही हैं।

इतना सुनते ही तपस्वी विश्वामित्र कुपित हो गए। ये देवियाँ कौन हैं ? क्या इन्हें मेरे तप बल का

इतना भी ध्यान नहीं कि यदि मुझे क्रोध आ गया तो क्या हालत होगी। ऋषि वहीं पहुँचे, जहाँ देवियाँ मस्त बनी तपोवन को उजाड़ती हुई मौज मना रही थी।

विश्वामित्र के लिए यह असह्य था। उसीका तपोवन उसी के देखते-देखते कोई नष्ट कर दे। उन्होंने आकण्ठ कुपित भाषा से उन्हें ललकारा, पर देवियों पर कोई असर नहीं हुआ, वे हँसती रही। बल्कि तपस्वी के क्रोध को और उग्र बनाने की भावना से कहने लगी- तुम संन्यासी बने हो, ऊपर से क्रोध कर रहे हो, यह कैसा है तुम्हारा संन्यास। तुम गृह त्यागी बनने का ढोंग ही कर रहे हो, क्योंकि उस घर को छोड़ उस तपोवन में तुम्हारी मूर्च्छा बनी हुई है। ऐसा ढोंग रचकर क्या सच्चा संन्यास जीवन पाल रहे हो।

विश्वामित्र के लिए अपूर्वश्रुत था। उसके सामने कोई इतनी जीभ फटकारे, ऐसा कभी हुआ ही नहीं। देवियों का इतना कहना आग में घी डालने से कम नहीं था। तपस्वी ने भस्म करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह निष्फल रहा। तब उसने अपने तपोबल से उन्हें लताओं से बांधकर मन को संतोष कराया।

यद्यपि देवियों को यह भरोसा था कि उनके पास देव शक्ति है, उनका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

तथापि तपोबल के समक्ष वे लाचार बन गई। वे भस्म तो नहीं हुई पर तप बल से बंध अवश्य गई। हाथ पाँव चलाने के बावजूद वे स्वयं को बंधन से मुक्त नहीं कर पाई। वे रोने चिल्लाने लगी।

राजा हरिश्चन्द्र उधर से निकल रहे थे। देवियों का करुण क्रन्दन उनके कर्ण मुहरों में गिरा। उनका मुड़ाव उधर हो गया। देवियाँ सहायता के लिए अनुनय करने लगी। हरिश्चन्द्र ने उन्हें बन्धन मुक्त कर दिया।

जब विश्वामित्र ऋषि को यह ज्ञात हुआ कि उसके द्वारा बंधन में बंधी गई देवियों को राजा हरिश्चन्द्र ने मुक्त कर दिया है। ऐसा ज्ञात होते ही उसका सारा क्रोध राजा हरिश्चन्द्र की तरफ मुड़ गया।

बस, देवता अपने षड़यंत्र के प्रथम चरण में सफल हो गया। उसका यही उद्देश्य था कि कैसे ही करके ऋषि विश्वामित्र को कुपित किया जाए, फिर उस क्रोध दावानल को राजा हरिश्चन्द्र की तरफ मोड़ दिया जाए। अपने षड़यंत्र के प्रथम चरण की पूर्ति से वह खुश हो रहा था।

राजा, तुम स्वयं को क्या समझ रहे हो ? क्या तुम्हें मेरे तप बल का बोध नहीं है, विश्वामित्र ऋषि ने राजा हरिश्चन्द्र को अत्यन्त कुपित शब्दों में कहा। तपस्वीवर ! मैंने ऐसा क्या किया, जिसे आपको दुःख

हुआ ? तुमने क्या किया, यह भी अब मुझसे पूछ रहे हो ? तुमने मेरे अपराधियों को मुक्त करके मेरा अपराध नहीं किया ? क्या तुम अपराधी नहीं हो ? मुनिवर ! मैंने ऐसा किसी अपराध भाव से नहीं किया। हरिश्चन्द्र बोले। विश्वामित्र ने प्रति प्रश्न किया- क्या मुझे मेरे अपराधी को दण्ड देने का अधिकार नहीं ? जब मैंने मेरे अपराधियों को दण्डित किया तो तुमने उन्हें क्यों मुक्त कर दिया ?

आप तपस्वी हैं। आपका कार्य साधना का है। दण्ड देने का कार्य राज्याधीन है। तपस्वी के साथ कोई बुरा व्यवहार करे तो उसका दण्ड भी राजा द्वारा ही प्रदेय है। राजा द्वारा इस प्रकार नीति की बात कहने पर अंगारे बरसाते हुए ऋषि बोले- अब तुम मुझे नीति समझाओगे।

मुनिवर ! नीति समझाने की बात नहीं है। मैंने देवियों को मुक्त कर राज-धर्म का ही पालन किया है। किसी के कष्ट का निवारण करना राजा का धर्म है ? कहकर राजा चुप हो गया ?

अच्छा, तुमने मेरी अपराधियों को मुक्त कर राजधर्म का पालन किया है ? तो और भी राजधर्म का पालन करोगे ? अवश्य महाराज यदि मैंने किसी स्थान पर राजधर्म का पालन नहीं किया तो मैं राजा कैसा ? हरिश्चन्द्र उत्तर दिया।

यह बात है, तो तू यह भी जानता है कि दान करना भी राजधर्म के अन्तर्गत ही है। राजा से की गई याचना कभी खाली नहीं जाती। विषय को मोड़ देते हुए विश्वामित्र ने कहा। जानता ही नहीं, बल्कि पालन भी करता हूँ।

अच्छा, हमारी एक याचना है, पूरी करेगा ?

आप याचना कीजिए, मैं उसे पूरा करने में असमर्थ रहूँ, तब और कुछ कहिएगा।

विश्वामित्र- मैं तुमसे ससागर पृथ्वी और तेरे राज वैभव की याचना करता हूँ।

तत्काल संकायपूर्वक पूरा राज्यदान ऋषि को करते हुए राजा के चेहरे पर सल तक नहीं पड़ा।

विश्वामित्र सोच रहे थे, यहाँ यह अटक जाएगा। पर बात बढ़ती गई। विश्वामित्र भी अपनी हार मानने को तैयार नहीं। उसने कहा दान तभी सफल होता है, जब उसके साथ दक्षिणा भी हो।

जरूर, मैं एक हजार स्वर्ण मुहरे दक्षिणा में दे रहा हूँ। कहते हुए राजा ने कोषधिकारी को एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ देने को कहा।

ओ राजा, यह क्या नाटक कर रहे हो ? तुमने मुझे संकाय पूर्वक राज्य दिया तो कोष उससे अलग कहाँ

रह गया ? यह एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ तुम्हें अपने पास से देनी होगी।

मेरे पास तो इस समय कुछ भी नहीं है। पूरा राज्य देकर मैं और मेरी रानी तो यहाँ से एकदम खाली हाथ निकल जाना चाहते हैं। राजा ने अपनी स्थिति बताई।

विश्वामित्र बोला- तो मैं इसका क्या करूँ ? यह तो आपका ही वचन है और आपको ही उसे पूरा करना है।

यह वचन भी मैं पूरा करूंगा। इसके लिए आप मुझे एक मास का समय दीजिए- स्वयं अर्जित करके यह राशि मैं आपको चुका दूंगा- राजा ने कहा।

विश्वामित्र हँसते हुए कहने लगा- आपके दु:ख को देखकर एक शर्त पर आप को इस राशि से मुक्त कर सकता हूँ।

कैसे ?

यह कि अपने वचन को वापिस लेने की बात कह दो कि सत्य वचन का त्याग कर दिया है, मैं सन्तुष्ट हो जाऊंगा- विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को विचलित करने की चेष्टा की।

ऋषि ही पुन: बोले ऐसी दशा में तो मैं तुम्हारा यह सारा राज्य भी लौटा देने के लिए तैयार हूँ।

हरिश्चन्द्र ने कहा- क्या समझते हैं आप हरिश्चन्द्र को और उसके अटूट सत्यव्रत को ? एक बार दिया हुआ वचन वह प्राण देकर भी पूरा करेगा। आप जो सत्य की इस प्रकार भर्त्सना कर रहे हैं, वह शोभास्पद नहीं। सत्य तो साक्षात् भगवान है।

विश्वामित्र की ओर मुँह करके उसने कहा- आपकी राशि भी आपको यथा समय मिल जाएगी।

तब अयोध्यावासियों से रुदनपूर्ण विदाई के साथ हरिश्चन्द्र खाली हाथ एकाकी वन की ओर चल दिया। कारण, नए राजा विश्वामित्र ने आदेश दिया कि रानी तारामती और कुमार रोहित हरिश्चन्द्र के साथ नहीं जा सकेंगे- उसे अकेले ही रहना होगा जब तक कि एक हजार स्वर्णमुद्राएँ का ऋण न चुका दिया जाए।

तारामती ने यह सुना तो अपने पति को जाते हुए रोका और निवेदन किया- आप अकेले न जाएँ, हम यहाँ आपके बिना कत्तई नहीं रह पाएंगे। आप मुझे किसी को बेचकर एक हजार स्वर्णमुद्राएँ चुका दें और ऋणमुक्त हो जाएँ और विश्वामित्र को कहा- जिस महापुरुष ने हँसते हुए अपना सारा राज्य दे दिया है, एक छोटी सी राशि के लिए उसे उसके परिवार से विलग न करें।

न जाने क्या सोचकर विश्वामित्र ने तारामती

और रोहित को हरिश्चन्द्र के साथ जाने की आज्ञा दे दी।

तब सत्यव्रत की वेदी पर अपने प्राण तक न्यौछावर कर देने की भावना रखने वाला हरिश्चन्द्र और उसके सहभागी पत्नी एवं पुत्र चले कंटीले-पथरीले वन मार्ग पर नंगे पाँवों अनिश्चित भविष्य की आशंकाओं को आँखों में समाये हुए।

❖ ❖ ❖

पतिदेव, आपने अपने सत्यव्रत की रक्षा में घोर कष्ट सहन करने के लिए कमर कस ली है तो मैं भी आपकी सहधर्मिणी ही हूँ। क्या आप अपने सहधर्म को भी सक्रिय होने का अवसर प्रदान करना नहीं चाहेंगे ? तारामती ने अनुग्रह किया।

अयोध्या राज्य की सीमा से निकल बड़ी दूर काशीनगर राज्य की सीमा के एक नगर में हरिश्चन्द्र अपने पत्नी-पुत्र सहित ठहरा था। एक हजार स्वर्णमुद्राएँ चुकाने की चिन्ता उस पर सवार थी, क्योंकि एक मास की अवधि समाप्त होने वाली थी। ऐसे में तारामती का अनुग्रह सुनकर हरिश्चन्द्र मन ही मन सारी बात समझ गया और अपनी धर्मपत्नी की पति भक्ति और उदारता पर हर्षित होने लगा। उसने कहा- प्रिये, सत्यव्रत की रक्षा का दायित्व मैंने लिया है किन्तु उस दायित्व के कष्ट तो

तुम दोनों भी भुगत ही रहे हो- यहीं क्या कम है ?

मैं कम या अधिक का प्रश्न कहाँ उठा रही हूँ? अब आप अधिक विचार न करें और आज ही यहाँ के बाजार में मुझे बेच दें एक हजार स्वर्ण मुद्राओं के मोल में। उससे ऋण चुका दें। सहधर्मिणी की इतनी सी सक्रियता आपको स्वीकारनी ही होगी। क्या कहता तब हरिश्चन्द्र अपनी सदाशयी सहधर्मिणी को ?

हरिश्चन्द्र के देखते-देखते उसकी सहधर्मिणी तारामती-रानी रही हुई तारामती सिर पर घास का पूला रखकर खुले बाजार में बिकी एक हजार स्वर्णमुद्राओं के मूल्य में। उसमें भी एक दारुण घटना घटते-घटते बच गई। रूप लावण्य से प्रभावित होकर एक गणिका ने पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं में तारामती की बोली जीत ली, किन्तु शील धर्म पर अडिग रहने का उसका कठोर व्रत सुन-समझकर वह गणिका खेद ग्रस्त हो गई और तारामती चिन्ताग्रस्त, तब एक विप्र ने गणिका को मूल्य चुका कर तारामती को स्वयं खरीद लिया।

तब रोहित की समस्या सामने आई। तारामती ने अपने पति से कहा- अब क्रीतदासी के रूप में काम करते हुए रोहित को बिना विप्रदेव की अनुमति के मैं अपने पास कैसे रख सकूंगी, इसके लिए रोहित को आप

ही सम्हालिए।

किन्तु रोहित हठ करने लगा कि वह तो अपनी माता के साथ ही रहेगा। आखिर माता-पुत्र के ममता-बन्धन को देखकर विप्र का दिल पसीज उठा और उसने तारामती से कहा-दासी, तुम अपने पुत्र को अपने साथ रख सकती हो।

तारामती और रोहित विप्र के घर में रहने लगे, जहाँ सभी तरह का नीचा से नीचा काम तारामती को करना पड़ता था। काम के मारे उसे सिर नीचा करने तक की भी फुर्सत नही मिलती थी। किन्तु जहाँ भावनाओं को सम्बल हो, वहाँ कर्त्तव्य-विमुखता कभी नहीं आती। तारामती अपने कार्य में जरा भी ढील या चूक नहीं करती- सत्यव्रत के निर्वाह में प्राणपण से जुटी रहती थी।

❖ ❖ ❖

हृदय पर असह्य दु:ख का पहाड़ उठाए अपनी धर्मपत्नी के विक्रय मूल्य की राशि ले चुकाने का भाव बना, पर यह तो अधूरी राशि है। अभी पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ और चाहिए।

हरिश्चन्द्र स्वयं उल्टे पाँव उसी नगर में लौट आया और अपने सिर पर घास का पूला रखकर हाक लगाने लगा- मुझे बिकना है, कोई खरीदना चाहे तो

खरीद ले पाँच सौ स्वर्ण मुद्राओं में। मैं अपने स्वामी की निष्ठापूर्वक सेवा करूंगा तथा उनके प्रत्येक आदेश का कर्मठ पालन करूँगा। है कोई क्रेता ?

एक वृद्ध चांडाल सामने आया और वांछित राशि देकर बोला- मैंने तुम्हें खरीद लिया। चलो, तुम मेरे दास हुए, तुम्हें चौबीसों घण्टे श्मशान की रखवाली करनी होगी तथा प्रत्येक मुर्दा जलाने वाले से कर वसूलना होगा।

हरिश्चन्द्र ने कहा- मैं सत्य निष्ठा पूर्वक आपका कार्य करूंगा, आप निश्चित रहें। यह प्राप्त राशि अपने ऋण में चुका कर अपने कार्य पर मैं पहुँच जाता हूँ। विश्वामित्र स्वयं ही समय अवधि पूरी होते देख आ धमके, हरिश्चन्द्र ने शान्ति की साँस ली। एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ उन्हें दे मनोमन संतुष्ट हुए।

और इस तरह क्रीतदास के रूप में सत्यव्रती हरिश्चन्द्र बन गया एक चांडाल का सेवक और श्मशान का रखवाला। काम हो गया उघाड़े तन-बदन हाथ में लट्ठ लेकर रात-दिन श्मशान में घूमना और शव को जलाने आने वालों से कर की वसूली करना।

तब आई एक विकराल रात। उसकी कड़ी कसौटी का दृश्य लेकर। संध्या होते ही वर्षा के घने बादल छाये

होने के कारण गहरा अंधेरा होने लगा था और श्मशान का वातावरण भयावह बन गया। तब भी हरिश्चन्द्र रखवाली में बराबर घूम ही रहा था।

आधी रात होने वाली थी कि अति कारुणिक विलाप के स्वर सुनकर हरिश्चन्द्र का हृदय दहल उठा- ममता की ऐसी भयानक पीड़ा। स्वर समीप आने लगा और कुछ-कुछ स्पष्ट होने लगा तो वह और अधिक चौंका-यह कोई अति परिचित स्वर तो नहीं है ? तारामती का स्वर ? हाँ, हाँ, स्वर तो ठीक वैसा ही लग रहा है, इतना कारुणिक विलाप ? कौनसी विपत्ति टूट पड़ी है उस पर ? क्या सहना बाकी रह गया है अब और ?

स्वर एकदम समीप आया तो सब कुछ स्पष्ट हो गया- तारामती ही रुदन कर रही है और रोहित के लिए रूनद कर रही है, तो क्या रोहित नहीं रहा ? क्या हो गया उसे ? मेरा राजदुलारा रोहित क्या चल बसा है ? राज्य जाने पर भी मुझे तो कुछ भी महसूस नहीं हुआ, लेकिन आज तो मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है....

हरिश्चन्द्र की चेतना ने जैसे पलटा खाया और वह सोचने लगा- कहाँ है हरिशचन्द्र ? वह तो एक क्रीत दास मात्र है। रोहित भी मरा है और तारामती

उसका शव जलाना चाहती है तो उसका काम कर की वसूली है। अपना कर्त्तव्य भूलकर दु:ख के किन विचारों में वह खोया जा रहा है ? समीप पहुँच कर उसने जोर से हाँक लगाई- कौन है ? क्या कोई मुर्दा जलाना है ? ध्यान रहे, चांडाल का कर चुकाने के बाद ही मुर्दा जल सकेगा।

तारामती ने पति की आवाज तुरन्त पहचान ली। क्या इन्हें चांडाल के यहाँ नौकरी करनी पड़ी है? इन्हें क्या पता कि मैं इनके वंशधर को मैं नहीं सम्हाल पाई और वह रोहित सर्प दंश से मर गया है ? उसकी रुलाई बुरी तरह से फूट पड़ी- नाथ, क्या आप ही हैं ? मैं आपकी धरोहर की रक्षा नहीं कर सकी, देखिए यह आपका प्यारा रोहित है- हमें छोड़कर न जाने कहाँ चला गया है ?

देवी, इस समय मैं क्रीतदास के रूप में श्मशान का रखवाला हूँ। पहले चांडाल का कर दो, तब दाह संस्कार करो।

नाथ, मेरे पास देने को क्या है ? इस एक मात्र वस्त्र से अपना तन ढक रखा है और रोहित तो आपका पुत्र था- इसके ही दाह संस्कार का कर तो न मांगिए।

देवी, मेरा सत्यव्रत है कि मैं स्वामी की यथोचित सेवा करूँ और तुम मेरी सहधर्मिणी हो तो क्या मेरे

सत्यव्रत को खण्डित कराना चाहोगी ? कफन की कड़ी कसौटी पर क्या मुझे खोटा सिद्ध करोगी? नहीं पति देव, कदापि नहीं- कहकर तारामती सिंहनी की तरह खड़ी हो गई, बोली- मैं अपने इस एक मात्र वस्त्र का ही आधा भाग कर के रूप में देकर अपने लाल का अन्तिम संस्कार करूंगी।

उसने ज्योंही वस्त्र को दो भागों में फाड़ने के लिए हाथ बढ़ाया कि बिजली के चमकने जैसा उजाला हुआ और देव दुन्दुभि बजने लगी। पुष्पवर्षा हुई। देवगण जय नाद करने लगे। दिव्य रूप धारण किए हुए प्रकट हुआ वहीं देव अपने यथार्थ स्वरूप में। चारों ओर सुन्दर प्रकाश फैल गया- रोहित जीवित हो उठा और राजा, रानी, राजकुमार अपनी राजकीय सज्जा के साथ सिंहासनासीन थे। देव उनके चरणों में झुका हुआ था, कहने लगा- यह सब परीक्षा थी आपकी, आपके सत्यव्रत की, जो मैंने ली। आप कुन्दन की तरह चमक उठे हैं- अनन्त काल तक आपकी कीर्ति अमर रहेगी, पर मैं अपने अपराध के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

स्रोत- जवाहर किरणावली

सार- सत्य की सदा और अन्तिम विजय होती है।

❑ ❑ ❑

और यह आठवीं पत्नी !

तुम हर समय मुझसे विवाद करती रहती हो, लड़ती रहती हो, यह क्या कोई अच्छी बात है ? पुण्यसार ने कहा।

रत्नसुन्दरी बोली- हाँ, हाँ, विवाद करती हूँ, लड़ती हूँ- मुझे तुमसे कोई काम नहीं है।

दिमाग को इतना आसमान में क्यों चढ़ा रही हो ? भविष्य में तुम्हें किसी न किसी पुरुष की आज्ञाकारिणी स्त्री तो होना ही पड़ेगा, फिर इतना गुरूर क्यों?

होना पड़ेगा तो होना पड़ेगा, लेकिन तेरे जैसे सामान्य पुरुष की स्त्री तो होने से रही-

क्या मैं सामान्य हूँ और तू विशिष्ट है ? तेरे पिता से तो मेरे पिता अधिक धनाढ्य एवं प्रतिष्ठित हैं।

लेकिन अपने आप को देख, तू क्या है ?

अच्छा, यह बात है तो तू भी कान खोलकर सुन ले- 'तुझे मैंने अपनी स्त्री नहीं बनाया तो कुछ नहीं किया।

जा, जा, तू कुछ भी करने लायक है ही कहाँ ?

यह विवाद हुआ किशोर पुण्यसार और किशोरी रत्न सुन्दरी के बीच। दोनों एक ही कलाचार्य के पास एक साथ विद्याभ्यास कर रहे थे। पुण्यसार गोपालकनगर के सेठ पुरन्दर का पुत्र था तो रत्नसुन्दरी उसी नगर के सेठ रत्नसार की पुत्री।

रत्नसुन्दरी की ऐसी हल्की बातें सुनकर पुण्यसार का अनपका पौरुष जैसे कसमसाने लगा और वह क्रुद्ध होकर वहाँ से अपने घर पहुँचा। उसकी ऐसी दशा देखकर सेठ ने प्यार से पूछा- पुण्यसार, क्या बात हो गई जो तुम ऐसे क्रुद्ध और निराश दिखाई दे रहे हो ?

पिताश्री, और कुछ नहीं, मैं विवाह करूंगा तो रत्न सुन्दरी से ही तथा यदि ऐसा नही हो पाया तो मैं जीवित नहीं रहूंगा- जो कुछ मन में था, पुण्यसार ने उसी तरह से उगल दिया।

पिता हँस पड़े- मूर्ख बालक, अभी तो तुम किशोर हो, अभी से विवाह की बात कैसी ?

बालक की हठ जारी रही- विवाह अभी करने को कौन कहता है? बस, मेरा और रत्नसुन्दरी का विवाह आज ही और अभी ही दोनों माता-पिताओं के बीच निश्चित हो जाना चाहिए।

अच्छा, हो जाएगा। अब जाकर भोजन करलो।

भोजन तभी करूंगा जब आप सेठ रत्नसार के यहाँ से निश्चय करके लौट आएंगे।

सेठानी ने भी बहुत जोर दिया तो विवश हो सेठ पुरन्दर उसी समय सेठ रत्नसार के यहाँ गए। इतना बड़ा सेठ स्वत: ही उसके यहाँ आया है- जानकर सेठ रत्नसार अतीव प्रसन्न हुआ तथा उसने अतिथि का हार्दिक स्वागत किया। सेठ पुरन्दर ने अपने पुत्र क लिए उसकी पुत्री का हाथ मांगा तो सेठ रत्नसार प्रसन्न होते हुए बोला- समय आने पर मैं तो स्वयं ही यह प्रस्ताव आपके समक्ष प्रस्तुत करने की इच्छा रखता था, आपने ही पहले बता दिया है तो यह मेरा सौभाग्य है। आपका प्रस्ताव मुझे स्वीकार है।

पिता क्या समझता, किन्तु पास ही बैठी हुई रत्नसुन्दरी तत्काल समझ गई कि यह अवश्य पुण्यसार की हठ के कारण हुआ है, लेकिन उसके लिए तो यह घोर अपमान की बात है- आखिर उसने किस बुरी तरह से पुण्यसार को सुबह ही तो लताड़ा है ? वह बीच में ही बोल उठी - पिताश्री जो आप स्वीकार कर रहे हैं, मुझे स्वीकार नहीं है। इस कारण अपनी स्वीकृति सोच समझकर ही दें, वरना भविष्य में कठिनाई आ जाएगी।

पुरन्दर सेठ चौंका- इस किशोर वय में ही यह कन्या यदि ऐसी धृष्ट और लज्जाहीन है तो भविष्य में इसका व्यवहार सुखद कैसे हो सकता है ?

वह अनमना सा होकर जाने के लिए उठ खड़ा हुआ। रत्नसार सेठ तुरन्त उसकी नाराजगी समझ गया, घर से बाहर पहुँचाकर उसने कहा- श्रेष्ठिवर, कन्या अभी नादान है, आप किसी प्रकार का विचार न करें। वह आपकी ही बहू बनेगी, मैं उसे यथा-समय समझा दूंगा। मेरा निर्णय पक्का है।

सेठ ने घर आकर पुण्यसार को समझाया- क्या देखा तुमने रत्नसुन्दरी में जो बेहूदा जिद कर बैठा ? वह तो अविनयी और हठी है।

कारण न पूछिये, मैनें उसके साथ विवाह करने का पक्का निश्चय कर रखा है। पुण्यसार पर पिता के कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

ऐसा ही हो तब भी उतावलापन मत दिखा। समय पर सब तेरे मन-लायक हो जाएगा-पिता ने आश्वासन दिया और अपने कार्य से सेठ बाहर चला गए।

पुण्यसार भी तब तत्कालीन सन्तुष्टि लेकर विद्याभ्यास में प्रवृत्त हो गया।

❖ ❖ ❖

पुण्यसार, यहाँ इस मंजूषा में राजा के यहाँ से आया रत्नहार रखा हुआ था, वह नहीं है। क्या तुमने उसे किसी अन्य स्थान पर रख दिया है?

पिताश्री, मैं नहीं जानता कि वह रत्नहार कहाँ गया है?

पर तुम यह तो जानते थे कि वह इस मंजूषा में रखा हुआ था ?

हाँ, यह तो मुझे ज्ञात था।

फिर यह तुम्हें ज्ञात क्यों नहीं है कि वह कहाँ चला गया?

मैं क्या कह सकता हूँ ?

तुम कुछ नहीं कह सकते, किन्तु मैं कह सकता हूँ कि वह रत्नहार तुम्हीं ने चुराया है- छिपे-छिपे बड़े जुआरी जो बन गए हो !

युवावस्था में प्रवेश करने पर बुरी संगति के कारण पुण्यसार छोटे-से बड़ा और बड़े से पक्का जुआरी बन गया था। लाखों मुद्राएँ हारता-जीतता रहता था, लेकिन जिस दिन जुए में वह बुरी तरह से हारा, उस दिन चुकाने के लिए उसके पास एक मुद्रा तक नहीं बची थी, इस कारण जानकारी होने से उसी ने राजा का रत्नहार चुरा कर जीतने वाले जुआरियों को दे दिया था, किन्तु

सच कह देने का उसमें साहस नहीं था, जो किसी भी अपराधी में वस्तुतः होता ही नहीं है।

आप कुछ भी कह दें- मैं रत्नहार के बारे में कुछ नहीं जानता।

पुत्र, मैं अन्तिम बार कहना चाहता हूँ कि तुमने जिसे भी दिया हो, उससे वह रत्नहार वापिस ले आओ। यह मेरी प्रतिष्ठा का प्रश्न है, मैं राजा को क्या मुँह दिखाऊंगा ? तुम मेरी व्यथा को समझो।

मैं कुछ नहीं कर सकता, पिताश्री।

तो ठीक है, तुम मेरे घर से भी इसी समय निकल जाओ। जब रत्नहार लेकर आओ तभी लौटना।

सेठ पुरन्दर के क्रोध की सीमा नहीं रही।

शाम का अंधेरा धुंधलाने लगा था, पुण्यसार घर से निकला, नगर से निकला, लेकिन उस समय जाए तो कहाँ जाए और वह भी अपने घर से निकाला जाकर। कुछ दूरी पर उसे एक वट वृक्ष दिखाई दिया, जिसके तने में एक बड़ा-सा कोटर था। वह रात उसने उसी कोटर में छिपकर बिताने का निश्चय किया। वह उस कोटर में इस तरह दुबक कर बैठ गया कि मार्ग से आता जाता कोई उसे देख न सके।

पुण्यसार को कुछ रात बीतने पर कोटर से बाहर

किन्हीं दो महिलाओं की बात सुनाई दी, उसने जरा सा बाहर झाँककर देखा- वे दोनों देवांगनाएँ थी। कान लगाकर वह उनकी बातें सुनने लगा।

एक बोली- रात बड़ी सुहावनी है, यहीं भ्रमण करें।

दूसरी ने कहा- कोरा भ्रमण क्या करें ? कहीं कुछ कौतुक हो तो देखें।

क्या कौतुक है वहाँ ?

वहाँ एक सेठ है, उसके सात कन्याएँ हैं-धर्म सुन्दरी, धन सुन्दरी, काम सुन्दरी, मुक्ति सुन्दरी, भाग्य सुन्दरी, सौभाग्य सुन्दरी और गुण सुन्दरी। सेठ को गणेशजी ने वर दिया है कि आज बड़े सवेरे तैयार विवाह मंडप में दो विशिष्ट महिलाएँ आएंगी, उनके पीछे-पीछे एक पुरुष भी होगा- बस उसी पुरुष के साथ अपनी सातों कन्याओं का विवाह कर देना। चलकर देखते हैं कि वह भाग्यवान पुरुष कौन आता है ?

हाँ, यह तो जरूर कौतुक रहेगा। किन्तु हम दोनों भी कौतुक करती चलें तो कैसा रहे ?

वह कैसे ?

हम इसी वट वृक्ष पर बैठकर वहाँ चलें जड़ समेत वृक्ष को उड़ाकर।

हाँ, यह तो कौतुक ही रहेगा।

और इस प्रकार पूरा वट वृक्ष दोनों देवांगनाओं तथा पुण्यसार को साथ लेकर वल्लभीपुर की ओर उड़ चला।

जहाँ वट वृक्ष को उतारा गया, सामने ही विवाह मंडप बना हुआ था और सातों कन्याओं के साथ पूरा श्रेष्ठि परिवार प्रतीक्षारत् खड़ा था। वृक्ष से उतरते ही दोनें देवांगनाएँ देखने के लिए विवाह मंडप की ओर चली तो पीछे-पीछे पुण्यसार भी हो गया। सातों कन्याओं के पिता ने यह दृश्य देखा और उसे निश्चय हो गया कि गणेशजी का वरदान फलीभूत हो गया है। दोनों विशिष्ट महिलाओं के एक ओर होने के बाद उसने ससम्मान पुण्यसार को बुलाया, साथ लिया और वर रूप बनाकर विवाह मंडप में बिठा दिया। एक के स्थान पर पुण्यसार यकायक सात-सात पत्नियों का पति बन गया।

सातों ने पुण्यसार को घेर कर भांति-भांति के प्रश्न पूछने शुरू किए, ताकि वे अपने पति का पूर्ण परिचय पा सकें। उधर पुण्यसार को चिन्ता सताने लगी कि उसके पहुँचने से पहले ही यदि दोनों देवांगनाएँ वट वृक्ष को उड़ा ले जाएंगी तो उसका पुनः अपने घर पहुँचना कठिन हो जाएगा, क्योंकि तब तक उसे अपने

आचरण पर पश्चाताप हो आया था। बीच में ही उसने लघुशंका का बहाना किया और उठ खड़ा हुआ। फिर भी जब गुण सुन्दरी साथ-साथ चली तो लघुशंका करने के बहाने एक कोने में खड़े रहकर वहाँ दीवार पर उसने एक श्लोक लिखा ओर चुपचाप उसी वट वृक्ष की कोटर में बैठ गया। उस लिखे गए श्लोक का आशय यह था- दैवयोग से गोपालकपुर से वल्लभीपुर आए हुए मेरे साथ सातों कन्याओं का पाणिग्रहण हुआ, सो मैं पुनः अपने गाँव जा रहा हूँ।

आवश्यक समय के बाद भी नवविवाहित पति नहीं आया तो गुणसुन्दरी सशंकित हो उठी। इधर-उधर पता किया- कहीं उसका पता नहीं मिला। पिता भी चिन्तित हुआ कि एकदम अपरिचित के साथ बिना कुछ पूछताछ किए ही पाणिग्रहण कर डाला- अब मेरी पुत्रियों का क्या होगा ?

इधर-उधर देखते-देखते दीवार पर कुछ लिखा हुआ गुणसुन्दरी को दिखाई दिया, उसने पढ़ा, उसे निश्चय हो गया कि यह यहाँ से भागते समय उनके पति ने ही लिखा है। पता चल गया कि वह गोपालकपुर का निवासी है। गुण सुन्दरी ने बीड़ा उठाया कि वह पति को खोज कर लाएगी, लेकिन खोज करने जाएगी गुण सुन्दर

बन कर। उसने पुरुष वेश धारण किया और खोज में साहस के साथ वह निकल पड़ी।

❖ ❖ ❖

सेठ ने क्रोधावेग में पुण्यसार को उस असमय में घर से निकल तो दिया, लेकिन सेठानी के डपटने पर वह अपने पुत्र को मनाकर वापिस लाने के लिए निकल पड़ा। रातभर वह इधर-उधर घूमता रहा, किन्तु पुण्यसार कहीं दिखाई नहीं पड़ा। सबेरा होते-होते जब वह नागर के बाहर उसी वट वृक्ष के सामने से निकल रहा था तब कोटर में जिस चेहरे की उसे हल्की-सी झलक दिखाई दी, वह उसे पुण्य सार का ही प्रतीत हुआ। वह भागकर कोटर के पास पहुँचा तो देखकर स्तंभित रह गया कि वर के वस्त्राभूषणों से सुज्जित पुण्यसार ही वहाँ था। सारी बात जानकर उसके हर्ष की सीमा नहीं रही कि सात-सात सुन्दरियों के साथ उसके पुत्र का विवाह हो गया है।

गुण सुन्दर गोपालकपुर पहुँच तो गया, परन्तु पति का पता लग नहीं पाया। वल्लभीपुर के श्रेष्ठि के नाम से उसकी ख्याति भी हो गई तथा राजपुत्र एवं उसके मित्र पुण्यसार के साथ उसकी मैत्री भी हो गई, पर वास्तविकता छिपी ही रही। यहाँ तक कि उसे

सर्वगुण सम्पन्न जानकर सेठ रत्नसार ने अपनी पुत्री रत्नसुन्दरी का गुणसुन्दर के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा और विवशता की परिस्थिति में वह विवाह सम्पन्न भी हो गया।

रत्नसुन्दरी का गुणसुन्दर के साथ विवाह होते ही मानो पुण्यसार के सिर पर गाज गिरी-उसकी प्रतिज्ञा पूरी होने की संभावना ही मिट गई। उसने अपनी कुलदेवी का आह्वान किया और प्रकट होने पर सारी परिस्थिति बताकर मृत्यु का वरण कर लेने की कामना की। तब कुलदेवी ने रोका वत्स, मृत्यु की बात मत कर, सब कुछ तेरी प्रतिज्ञा के अनुरूप ही हो रहा है। समय आने पर सब प्रत्यक्ष हो जाएगा। पुण्यसार धीरज धरकर बैठ गया।

गुणसुन्दर अर्थात् गुणसुन्दरी जब वल्लभीनगर से चली थी तो यह प्रतिज्ञा लेकर चली थी कि छः माह के अन्दर वह पति का पता लगा लेगी अन्यथा छः माह बाद अग्नि शरण हो जाएगी। छः माह बीत गए, इसलिए प्रतिज्ञा के अनुसार अग्नि में जल मरने की तैयारी की गई। राजा, सेठ पुरन्दर, रत्नसार, पुण्यसार आदि सब आश्चर्य चकित कि गुणसुन्दर अग्नि में जलकर क्यों मर रहा है ? और रत्न सुन्दरी के दुःख का तो पार नहीं - जब पति मर रहे हैं, तब उसे तो मरना ही होगा।

अग्निशरण होने से पहले गुणसुन्दरी ने अपना वास्तविक परिचय दिया और सारी कथा सुनाई। जब उस श्लोक का उल्लेख आया तो पुण्यसार आगे बढ़कर आया और उसने उसे सारी बात बता कर घर चलने को कहा।

तब समस्या आई रत्नसुन्दरी के सामने कि वस्तुतः उसका विवाह तो एक स्त्री के साथ ही हुआ है, अब उसका क्या होगा ? राजा ने समाधान दिया कि गुणसुन्दरी जिसकी पत्नी है, रत्नसुन्दरी भी उसी की पत्नी कहलाएगी।

इस प्रकार सातों पत्नियों के बाद पुण्यसार को यह आठवीं पत्नी बड़ी ही कठिनाई से प्राप्त हुई जबकि उसे सर्वप्रथम शीघ्रातिशीघ्र पाने की कामना पुण्यसार ने की थी।

उन्हीं दिनों ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आचार्य ज्ञानसागर का वहाँ पर पधारना हुआ। समग्र नगर निवासियों के साथ पुण्यसार भी दर्शन-प्रवचन श्रवण के लिए उन आचार्य के पास पहुँचा। उचित अवसर देखकर उसने अपनी उत्कंठा भी व्यक्त की- हे भगवन्, मैंने पूर्वभव में क्या किया, जिसके सुफलस्वरूप आठ-आठ पत्नियों का सुख मुझे इस जन्म में मिला ? और दूसरे, इस आठवीं पत्नी के मिलने में इतना विरोध कैसे रहा ?

आचार्य ने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा- हे पुण्यसार, अपने पूर्वभव में तू नीतिपुर ग्राम का

एक कुलपुत्र था। तुमने अल्पायु में ही मुनि सुधर्मा के सान्निध्य में दीक्षा ग्रहण की थी और पाँच समिति व तीन गुप्ति रूप आठ प्रवचन माता की आराधना विशेष रूप से की थी। उनमें से आठवीं काय गुप्ति अनुशासन से इधर-उधर हो जाती थी। कभी-कभी तो आवश्यक क्रियाओं का भी खण्डन हो जाता था, तब गुरु से सावचेत किए जाने पर तूने वैय्यावृत्य का अवलम्बन लिया और कष्टपूर्ण रीति से काया पर नियंत्रण किया।

प्रभु, तो क्या आठवीं पत्नी की कठिनाई का यहीं रहस्य है ?

हाँ देवानुप्रिय, जैसे आठवीं प्रवचन माता की आराधना में तुम्हारी काया ने कष्ट दिए, वैसे ही इस आठवीं पत्नी से तुम्हें कष्ट मिले। किन्तु यथासमय कष्टमुक्त होकर धर्म कार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए।

'तहत्' कहकर पुण्यसार ने श्रावकत्व स्वीकार किया।

सार- धर्म कार्य में कदापि प्रमाद नहीं करना चाहिए।

❑ ❑ ❑

तेरह प्राणियों का हत्यारा

जिस युवक ने सारे नगर में अपने दुस्साहसपूर्ण अपराधों से भीषण आतंक मचा रखा था, वही जब राज्यादेश से पकड़ा गया और उसे मुंडित कर गधे पर बिठाकर घुमाया गया, उसकी मानसिक खिन्नता का पार नहीं था। उसे तिरस्कृत एवं ताड़ित करके छोड़ तो दिया गया, पर अपने अपमान से वह छटपटाने लगा। उसके मन में आया कि सारे राज्याधिकारियों को, उसका वश चले तो एक झटके में उड़ा दे, पर वह विवश था। वह कुछ नहीं कर सका और इसी कारण उसकी प्रतिहिंसा की अग्नि बुरी तरह से भीतर ही भीतर धधकने लगी। उस आपराधी का नाम था दुर्धर।

दुर्धर धरा गया और छोड़ा गया- निराशा से जर्जरित होकर वह एक घनी अटवी में आगे बढ़ता गया। रात होने पर भूखा-प्यासा वह एक बरगद के नीचे सो गया। उसकी नींद तब खुली जब भीलों के एक समूह ने

उसे पकड़कर बांध दिया। उसने कारण पूछा तो बताया गया कि सरदार को देवी पर नर बलि चढ़ानी है, इसी उद्देश्य के लिए उसे ले जाया जा रहा है। अब फिर वह विवश था।

भील सरदार के सामने जब दुर्धर को प्रस्तुत किया गया तो वह घूरकर उस युवक को देखने लगा- भीमकाय चेहरा, विशाल वक्षस्थल, मांसल भुजाएँ और कसी हुई देह। उसने मन में निश्चय किया कि इसकी बलि न देकर अपनी टोली में शामिल कर लिया जाए, क्योंकि डाके डालने में यह हिम्मतवर साबित होगा। उसने पूछा- युवक, तू कौन है?

दुर्धर ने बिना किसी झिझक के उत्तर दिया- मैं एक चोर और अपराधी हूँ, मेरे नाम का आतंक फैला हुआ था।

फिर तुम पेड़ के नीचे क्यों पड़े हुए थे, जहाँ से मेरे लोगों ने तुम्हें पकड़ा?

सरदार, जरा-सी चूक से मुझे राज्याधिकारियों ने पकड़ लिया, फिर घोर अपमानित करके छोड़ दिया। उसी अपमान की पीड़ा से दु:खी होकर मैं पेड़ के नीचे सो गया था, पर आप मेरी बलि न चढ़ाइए।

क्यों, भला?

मैं आपके काम आऊंगा, पूरी वफादारी से आपकी सेवा करूंगा तथा अपनी अपराध-कुशलता से आपके लिए सम्पत्ति लूटकर लाऊंगा। खास बात यह भी है कि मैं अपने अपमान का बदला लेना चाहता हूँ। आप मुझे मौका दीजिए।

अच्छा, हम तुझे अपनी टोली में शामिल कर लेते हैं- सरदार ने निर्णय दिया।

दुर्धर भील टोली में शामिल क्या किया गया, अपनी धूर्तता और बर्बरता से कुछ ही समय में वह डकैत टोली का नायक भी बना दिया गया। वह सबका चहेता हो गया।

एक बार दुर्धर अपने साथियों के साथ डाका डालने के लिए वत्सदेश के कुशस्थल नगर में गया। पूरी टोली भारी लूट-खसोट, अत्याचार और भीम गर्जना करती हुई पूरे नगर में फैल गई। दुर्धर घूमते हुए एक झोंपड़ी में घुस गया। वह एक ब्राह्मण की झोंपड़ी थी। ब्राह्मणी खीर बना रही थी। वह खीर छीन कर खाने लगा। ब्राह्मणी जोर से चिल्लाई- चोर, चोर इसे पकड़ो। उसकी हिमाकत पर दुर्धर का गुस्सा भड़क उठा, उसने तलवार के एक ही झटके में ब्राह्मणी का सिर धड़ से अलग कर दिया। वह गर्भिणी थी, गर्भस्थ शिशु भी मर

गया। बाहर निकला तो भोली गाय ने भी उस दुष्ट का सींगों से सामना किया। उसकी गर्दन भी उसने काट दी- वह भी गर्भवती थी, दो प्राणियों की ओर हत्या हो गई। कुछ आगे बढ़ा तो पालतू कुतिया उस पर टूट पड़ी। उसका सिर भी उसने उड़ा दिया। उसके गर्भ में भी आठ बच्चे थे। उनकी हत्या और हो गई।

दुर्धर अपनी खून भरी तलवार को घुमाता हुआ अपनी टोली के साथ वन प्रदेश में आगे बढ़ गया। आगे उसने देखा कि कुछ निर्ग्रन्थ साधु एक मकान में ठहरे हुए हैं और उसे ही इंगित करके कुछ बात कर रहे हैं। उसे सुनाई दी- गुरु ने अपने शिष्य को भलामण की कि वह बाहर न जाए, क्योंकि तेरह प्राणियों का हत्यारा आ रहा है। दुर्धर की तलवार गुस्से से फिर ऊपर उठ गई, वह मकान के भीतर घुसकर बोला- साधु होकर भी तुम झूठ बोलते हो- तीन प्राणियों की जगह मुझे तेरह प्राणियों का हत्यारा बता रहे हो?

गुरु ने शान्त रहकर ही कहा- तुमने शायद तीनों के गर्भ में रहे हुए प्राणियों को नहीं देखा है। पहले जाकर देख आओ, तब झूठ- सत्य का निर्णय लो।

अभी ही देखकर आता हूँ। अगर झूठ निकले तो इसी तलवार से सबके सिर उड़ा दूंगा। तब तक यहीं ठहरे

रहना- कहा दुर्धर ने और भागा हुआ गया, पर भागा हुआ लौट भी आया। लौटकर बोला- आपकी बात सही निकली है, लेकिन यहाँ बैठे-बैठे आप जान कैसे गए कि मैंने नगर में हत्याएँ की और वे भी तेरह प्राणियों की? जरूर आप कोई जादू जानते हैं, उसे मुझे भी सिखाइए।

गुरु बड़े ज्ञानी थे और हृदय परिवर्तन की कला के मर्मज्ञ भी। वे बोले- अगर हमारे कहे अनुसार करोगे तो ऐसा जादू तुम्हें भी मिल जाएगा।

सच महात्मन्, मैं इस तरह दूर-दूर के रहस्यों का ज्ञान कर लूंगा, तब तो आप जो भी कहें मैं करने को तैयार हूँ। शीघ्र बताइए, मुझे क्या करना होगा? दुर्धर साधुओं के प्रति पूरी आस्था के साथ प्रभावित हो गया।

गुरु ने उसे जीवन सुधार सम्बन्धी कई बातों की जानकारी दी और तब बताया कि उसे चार प्रण ग्रहण करने होंगे- एक वह किसी के प्रति कृतघ्नता का आचरण नहीं करेगा। दो वह किसी भी परिस्थिति में झूठ नहीं बोलेगा। तीन वह किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करेगा और चार वह परस्त्री को सदा माँ-बहिन के समान समझेगा।

दुर्धर से सहर्ष कहा- ये चारों प्रण आप मुझे दिला दें। इनका पालन मैं पूरी निष्ठा के साथ करूंगा।

इस प्रकार निर्ग्रंथ साधुओं ने क्रूर अपराधी दुर्धर के जीवन परिवर्तन का बीज वपन कर दिया।

अगली बार जब दुर्धर डाका डालने निकला तो किसी सेठ की भव्य हवेली में घुसा। ताले तोड़कर उसने रत्न, स्वर्ण आदि पर्याप्त मात्रा में एकत्रित किया और बाहर निकलने लगा तो बाहर के कोठे में उसे बोरियों की थप्पी दिखाई दी। यह जानने के लिए उसने उनसे निकले सफेद पदार्थ को चखा कि यदि शक्कर हो तो वह कुछ बोरियाँ भी ले चले, लेकिन चखने पर मालूम हुआ कि वह तो नमक है।

लेकिन नमक के स्वाद से उसे अपने पहले प्रण की बात याद आ गई- कृतघ्न यानी नमकहरामी नहीं होना। सेठ का नमक खा लिया है तो अब वह उसी सेठ का रत्न, स्वर्ण आदि चुराकर कैसे ले जा सकता है? उसने सारा माल हवेली में ही छोड़ दिया और खाली हाथ चला गया।

उस समय उसे एक नया ही अनुभव हुआ। बहुमूल्य सामान छोड़ देने का खेद तनिक भी नहीं, किन्तु प्रण पालन का एक अनोखा आनन्द उसे हर्षित करने लगा।

वहाँ से दुर्धर सीधा राजमहल में पहुँच गया।

आधी रात का समय था, रानी ने डाकू को देख लिया तो उसका सुगठित शरीर उसे भा गया। वह बेझिझक दुर्धर के सामने चली आई और प्रणय याचना करने लगी- आओ, पहले तो मुझे ही लूट लो। कितना प्यारा है तुम्हारा रूप?

तुम कौन हो? दूर हट जाओ। मेरे लिए पराई स्त्री माँ बहिन के समान है। मुझे तो राज-सम्पत्ति ही लूटनी है- दुर्धर ने सरलता से कह दिया।

मूर्ख, मैं स्वयं रानी हूँ। सम्पत्ति तुझे जितनी चाहिए, मैं दे दूंगी- पहले मेरी कामना पूर्ति कर दे।

तुम्हारी इस नीचता पर मैं अपनी तलवार से तुम्हारा सिर उड़ा देता, लेकिन प्राणी हिंसा न करने का भी मेरा प्रण है, इसीलिए मेरे रास्ते से दूर हट जाओ।

अच्छा- रानी ने कहा और चिल्लाना शुरू कर दिया कि यह डाकू उसका शील भंग करने पर उतारू हो गया है बचाओ!

सैनिकों ने दुर्धर को घेरकर पकड़ लिया और प्रात:काल उसे राजा के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। राजा ने पूछा- तू कौन है? राजमहल में किस उद्देश्य से आया था? तूने रानी पर कुदृष्टि क्यों डाली?

निर्भीक होकर दुर्धर बोला- राजन्, मैं दुर्धर नाम

का डाकू हूँ। धन लूटने के लिए महल में आया था, किन्तु आपकी दुराचारिणी रानी ने मेरे से प्रणय याचना की। मैंने उसे ठुकरा दी तो उल्टी बात कहकर वह चिल्ला पड़ी। मेरा कोई दोष नहीं है।

एक क्षण के लिए मैं तुम्हारी बात मान भी लूँ तो रानी के कहने पर तुम्हारे फिसल जाने में क्या बाधा थी? धन भी तुम्हें मिल ही जाता।

महाराज, आपका कहना सही है, किन्तु मैंने निर्ग्रंथ गुरु से चार प्रण ग्रहण कर रखे हैं, जिनके अनुसार हिंसा, झूठ, कृतघ्नता एवं परस्त्री का मेरे त्याग है। अपने प्रणों का पालन मैंने प्राणपण से करने का निश्चय कर रखा है, फिर रानी की वह घृणित बात मैं कैसे मान जाता?

राजा ने ऐसे दो चार प्रश्न उससे और पूछे और मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह व्यक्ति डाकू भले हो, पर प्रण का पक्का है। इस कारण राज्य सेवा का यदि इसे अवसर दिया जाय तो यह बड़ा ही प्रभावी अधिकारी सिद्ध हो सकता है। राजा ने उसके सामने प्रस्ताव रखा- मैं तुम्हारी अपने प्रणों के प्रति निष्ठा एवं सुदृढ़ता से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ और यदि तुम डकैती और अपराध के इस अधम कार्य को छोड़ने के लिए

तैयार हो जाओ तो मैं तुम्हें राजपद देना चाहता हूँ।

दुर्धर विचारमग्न हो गया- कहाँ वह एक डाकू और कहाँ राजा उसे राजपद प्रदान करने को इच्छुक हो गया है, यह निश्चय ही प्रण पालन का ही सुपरिणाम है। यदि वह अन्य अनेक प्रणों को भी धारण कर ले तो क्या उसका जीवन इस प्रस्ताव से भी अधिक उत्तम श्रेणी का नहीं बन जाएगा? उसने राजा से निवेदन किया- मैं आपका यह प्रस्ताव अपने गुरु महाराज की आज्ञा से ही स्वीकार कर सकता हूँ। वे इसी नगर में विराज रहे हैं।

दुर्धर के साथ राजा भी साधुओं के पास गया और उन्हें सारी बात बताई। गुरु ने दुर्धर से कहा- जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करो। वह बोला- गुरुदेव, यदि मात्र चार प्रणों से राजा मुझे यह मान देने को तत्पर हो गए हैं तो अब मुझे ऐसे ऊँचे प्रण दिलाने की कृपा करें कि मेरा मान सारा संसार मान ले। मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।

दीक्षित होकर दुर्धर ने अपनी कठिन आत्मालोचना से परम पद प्राप्त कर लिया।

सार- प्रण पालन की दृढ़ता उन्नति दायक होती है।

❑ ❑ ❑

चारों में श्रेष्ठ कौन?

कभी-कभी मात्र एक सद्गुण अथवा प्रण का आस्थापूर्ण अनुशीलन ही जीवन विकास का ऐसा कीर्तिमान स्थापित कर देता है कि सामाजिक ऊँच-नीच, व्यावसायिक सदसतत्व, पद के सद्भाव- अभाव अथवा धन की न्यूनाधिकता के सभी मानदण्ड उस गुणशीलता में तिरोहित हो जाते हैं। वह एक सद्गुण ही सूर्य बनकर जीवन के सम्पूर्ण आकाश में प्रकाशमान हो उठता है। ऐसी ही प्रकाशमान चार जीवनियों की यह कथा है, जिनमें प्रश्न उपस्थित हुआ कि चारों में श्रेष्ठ कौन? किन्तु क्या इसका उत्तर संभव हो सका?

ऐसे प्रकाशमान जीवन का एक धारक था कान्हड़ कठियारा अर्थात् लकड़हारा- भोलाभाला, सरल और कठिन श्रम के आधार पर अपने जीवन का निर्वाह करने वाला। अयोध्या के आम्रवन में पधारे आचार्य धर्मघोष का जीवन प्रेरक प्रवचन जब उसने सुना तो उसके

अन्त:करण को अपार आनन्द मिला, किन्तु वह यह नहीं समझ पाया कि उसे तदनुसार करना क्या चाहिए? प्रवचन सुनकर सब चले गए तब भी आनन्दातिरेक से वह वहीं खड़ा रहा और श्रद्धाभाव से उन आचार्य का तेजस्वी मुखमण्डल निहारता रहा।

तब आचार्य ने ही उसे पूछा- भद्रे, क्या तुमने प्रवचन सुना?

हाँ गुरुवर, मेरे अन्त:करण को अपूर्व आनन्द मिला।

उसमें से क्या तुमने कुछ लिया?

क्या लेना चाहिए और कैसे? इसी पर सोच रहा हूँ। मैं कुछ निश्चित नहीं कर पाया हूँ।

ऐसा कोई प्रण अवश्य ग्रहण करो, जिसका पालन तुम अपने लिए सुविधाजनक समझते हो।

महाराज, मैं तो एकदम निपट अज्ञानी हूँ। प्रण को भला मैं क्या समझ पाऊंगा और क्या उसके पालन को याद रख सकूंगा?

तो तुम एक काम करो। पूनम की रात के पूरे चांद को तो पहचानते हो?

हाँ गुरुदेव, अच्छी तरह।

जिस रात में पूरा चांद हो, उस रात ब्रह्मचर्य के

पालन का प्रण ले लो। यह तो याद रख लोगे न?

यह प्रण दिला दीजिए। इसे अवश्य याद रख लूंगा और इसका पालन भी पक्के तौर पर कर लूंगा- कान्हड़ ने उत्साहपूर्वक कहा।

कान्हड़ ने वह प्रण सहर्ष स्वीकार कर लिया।

कान्हड़ कठियारा प्रतिदिन वनक्षेत्र से लकड़ियाँ काटकर लाता, उन्हें बेचता तभी उस दिन के भोजन का प्रबंध करता। एक दिन भी उसमें व्यवधान पड़ने पर भूखे रहने की नौबत आ जाती।

वर्षा ऋतु चल रही थी। एक बार रात भर मूसलाधार वर्षा होती रही, जो प्रात:काल तक भी नहीं थमी। फिर भी कान्हड़ को लकड़ियाँ काटने के लिए घर से निकलना ही पड़ा। भीगता हुआ वनक्षेत्र में वह काफी दूर तक चला गया, फिर भी काटने लायक लकड़ियाँ उसे न दिखाई दी। आगे बढ़ने का मार्ग रोक दिया एक तेजी से बहकर आती हुई नदी ने। वह नदी के किनारे खड़ा रहकर सोचता रहा कि कब बहाव मन्द हो वह उस पार जाकर लकड़ियाँ काटे?

अचानक नदी के बहाव में काष्ठ का एक बड़ा लट्ठा उसकी ही ओर आता हुआ उसे दिखाई दिया। उसने उस लट्ठे को निकाला, उसकी लकड़ियाँ काटकर

भारी बनाई और बेचने के लिए नगर की ओर चल दिया। वह लट्ठा बहुमूल्य बावने चन्दन का लट्ठा था, लेकिन सरलमना कान्हड़ को उसका क्या ज्ञान? लकड़ियों की उस भारी से चारों ओर ऐसी सुगंध फूट रही थी कि सारा का सारा वायुमंडल सुगंधित हो रहा था, पर कान्हड़ ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

बाजार में उसे मिल गया श्रीपति सेठ का मुनीम चंपक। वह पहचान गया कि यह काष्ठ बहुमूल्य है। वह कान्हड़ को सेठ के यहाँ ले गया, भारी वहीं डलवाई, उसे भारी का सामान्य मूल्य दो टका चुकाया और सेठ को खुशखबरी देने को गया, बोला- सेठ जी, आज हमें दुर्लभ काष्ठ प्राप्त हुआ है।

श्रीपति सेठ तुरन्त बाहर आए और उस काष्ठ को देखने लगे। पारखी थे, तुरन्त पहचान गए- यह तो बावना चन्दन है भाई, इसका मूल्य तो स्वर्ण के बराबर होता है। तुमने क्या मूल्य चुकाया है उसे?

मुनीम ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा- मूल्य तो हमेशा की तरह दो टका दिया है कान्हड़ कठियारे को।

यह तुमने अन्याय किया है, तुरन्त उसे वापिस बुलाकर लाओ- सेठ श्रीपति ने कड़ककर कहा।

कान्हड़ कठियारा वापिस आया तो सेठ ने उसे उस काष्ठ का मूल्य समझाया और भारी के बराबर स्वर्ण तुलवा कर उसे दिया। वह बोरे में सोना भर कर ले चला।

आग की तरह श्रीपति सेठ की सच्चाई और ईमानदारी का यह संवाद सारे नगर में फैल गया और सब मुक्त कण्ठ से सेठ की सराहना करने लगे।

बोरा भर सोना क्या छिपा रहता है? कान्हड़ को अपने कोठे से देखा काम लता नामकी वेश्या ने। उसका जी ललचा गया। मान पूर्वक उसने कान्हड़ को ऊपर बुलवाया और और भोग भागने का आमंत्रण दिया। कठियारा बेचारा सरलमना- तुरन्त मान गया कि चलो, यहीं रहना ठीक है, समय आराम से कटेगा। वेश्या ने केश कर्तन, स्नान, मज्जन आदि द्वारा उसका कायाकल्प करवाया, उसे सुस्वादु भोजन कराया तथा संध्या ढलने पर उसे साथ लेकर प्रेमालाप करती हुई अपने गवाक्ष में बैठी। काम लता का कामपूर्ण वार्तालाप कठियारे को सुहावना लगा- वह अब तक ऐसी बातें समझता ही कहाँ था?

अकस्मात् उस समय कान्हड़ की दृष्टि आकाश की ओर चली गई और उसे दिखाई दे गया पूनम का पूरा चांद। उसे अपने प्रण की याद आ गई और आस्था

ने उसे कहा- प्रण का पालन और प्रतिज्ञा का अनुशीलन सर्वोपरि है- उसके लिए कुछ भी और सब कुछ त्यागा जा सकता है। वह हिचकिचा गया कि अपने प्रण की बात वह उस वेश्या को कैसे बताए जो दिन भर से उसकी सेवा-टहल करती रही है? यदि उसे इस समय वह भोग न भोगने की बात कहेगा तो उसे भारी दु:ख होगा। तो क्या किया जाए? उसने निश्चय किया कि प्रण तो पालना ही है, किसी बहाने से वह बिना बताए ही यहाँ से चला जाए। उसने दीर्घशंका का बहाना किया और सारा स्वर्ण वहीं छोड़कर चुपचाप चला गया।

प्रण पालन के विचार से वेश्या का कोठा छोड़कर वह वहाँ से निकला तो उसे भीतर ही भीतर परम शान्ति का अनुभव हुआ। उसे लगा कि अभी नगर से ही निकल जाना चाहिए। वह वन क्षेत्र में जाता हुआ आगे से आगे बढ़ता ही चला गया।

उधर वेश्या रातभर कठियारे की प्रतीक्षा करती हुई थक गई। सुबह उसने उसकी सब ओर खोज कराई तब भी वह नहीं मिला तो उसके मन में विचार पैदा हुआ कि वह कठियारे के छोड़े हुए इतने स्वर्ण का क्या करे? जब कठियारे ने भोग ही नहीं भोगा तो उस स्वर्ण के किसी भी अंश पर उसका अधिकार तो है ही नहीं।

उसका पता ही नहीं चला है तो उस स्वर्ण को वह अपने पास एक पल के लिए भी रख लेना चोरी है। उसने निश्चय कर लिया कि वह अग्राह्य स्वर्ण राशि कदापि अपने पास रखकर दोष की भागी नहीं बनेगी। वह सारा स्वर्ण लेकर राजा के पास पहुँची तथा सारी घटना का विवरण देते हुए उसने निवेदन किया- राजन्, यह स्वर्ण राशि आपकी सेवा में समर्पित है, क्योंकि इसके स्वामी को मैं खोज नहीं पाई हूँ तथा यह मेरे लिए अग्राह्य है- मेरा इस पर तनिक भी अधिकार नहीं।

सारी घटना और वेश्या का निवेदन सुनकर राजा विस्मय में डूब गया- सोचने लगा- जिस स्वर्ण राशि को वेश्या भी स्वीकार नहीं कर रही है, उसे मैं कैसे स्वीकार कर लूँ? वह वेश्या होकर भी नि:स्पृह हो सकती है तो मैं उस धन की स्पृहा क्यों करूँ? राजा होने की दृष्टि से मेरा कर्त्तव्य यह है कि मैं स्वर्ण के वास्तविक स्वामी कान्हड़ कठियारे की गहन खोज कराऊँ और उसका धन उसे सौप दूं। राजा ने घोषणा करवा दी कि उक्त स्वर्ण राशि कान्हड़ कठियारे की है, अत: जहाँ कहीं भी हो वह आकर अपना धन ले जाए। वह किसी भी प्रकार के दण्ड का भय न रखे।

घोषणा की बात सुनकर कान्हड़ लौट आया

और राज्याधिकारी के समक्ष पहुँचकर बोला- मैं ही कान्हड़ कठियारा हूँ। राज्याधिकारी को उसकी फटेहाल हालत देखकर उस पर भरोसा नहीं हुआ, सो उसे लेकर वह राजा के पास पहुँचा और सारी बात बताकर बोला- मुझे विश्वास नहीं हुआ कि इस स्वर्ण का स्वामी यह व्यक्ति हो सकता है, अतः आपके समक्ष ले आया हूँ।

राजा ने उससे पूछा- सच-सच बताना, क्या तुम्हीं कान्हड़ कठियारा हो?

हाँ महाराज, मैं ही हूँ।

तो इतना स्वर्ण तुम कहाँ से ले आए? क्या कहीं चोरी-डाका तो नहीं डाला है? फिर इतना सारा स्वर्ण छोड़ कर चले कैसे गए? सारी बात मुझे समझ में नहीं आ रही है।

राजन् न मैंने कोई दुष्कृत्य किया है और न ही किसी प्रकार की कोई दुर्भावना रखी है। कहते हुए कान्हड़ ने राजा को पूरी बात बीती सुना दी। फिर बोला- मेरे कथन की प्रामाणिकता आप श्रीपति सेठ एवं काम लता वेश्या से जाँच सकते हैं।

राजा ने तत्काल दोनों को अपने सामने बुलवाया और दोनों से एक-एक करके पूछा कि क्या यही वह व्यक्ति है, जिसे इतना स्वर्ण दिया गया था, इतना स्वर्ण

छोड़कर जो चला गया था?

श्रीपति सेठ ने कहा- हाँ स्वामिन् यह वही व्यक्ति है जिसे मैंने इतना स्वर्ण दिया था।

इतने दीनहीन व्यक्ति को इतना स्वर्ण आपने किस कारण से दिया?

राजन् एक दिन यह बावना चन्दन की भारी लाया था जिसका मूल्य स्वर्ण से भी अधिक होता है। अज्ञानी होने से यह तो उसका मूल्य मेरे मुनीम से दो टका लेकर ही चला गया किन्तु मुझे ज्ञात होते ही मैंने इसको वापिस बुलवाया और लकड़ी के बराबर स्वर्ण तुलवा कर दिया। यह सब वही स्वर्ण है।

राजा का विस्मय और बढ़ गया श्रीपति सेठ की वैसी ईमानदारी देखकर। बाकी की घटना उसने काम लता वेश्या से सुनी और आगे की जानकारी के लिए राजा ने कठियारे से ही पूछा- फिर तुम अपना सारा स्वर्ण वेश्या के यहाँ छोड़कर क्यों चले गए?

महाराज, मुझे एक मुनिराज ने प्रण दिलाया था कि पूनम की रात में ब्रह्मचर्य का पालन करना। दिन को तो मुझे कुछ जानकारी हुई नहीं, संध्या के बाद पूरा चांद देखकर जब मैंने जाना कि आज तो पूनम की रात है, तब मेरा वहाँ रुके रहना उचित नहीं था। यह सोचकर

कि गया हुआ स्वर्ण तो फिर भी मिल जाएगा किन्तु टूटा हुआ प्रण फिर से नहीं मिल पाएगा, मैं वहाँ से चुपचाप निकल कर चला गया।

राजा का विस्मय और बढ़ गया- कठियारा होकर भी प्रण पालन के प्रति इतना सुदृढ़ और निर्लोभी कि सारा स्वर्ण भी छोड़कर चला गया। राजा ने कठियारे से कहा- ठीक है, तुम अपना यह स्वर्ण ले लो।

महाराज, मेरा निवेदन है कि इसे आप काम लता वेश्या को दिला दीजिए। वह इसे पाने की अधिकारिणी है। यह तो मैंने ही भोग भोगने का विचार त्यागा, उसमें इसका क्या दोष है?

राजा ने वेश्या को कहा- अच्छा, यह स्वर्ण तुम ले लो।

राजन्, मैं वेश्या हूँ तो क्या हुआ? मेरी भी अपनी सच्चाई और ईमानदारी है। जब इसने भोग-भोगा ही नहीं तो इस स्वर्ण पर मेरा अधिकार ही कैसे पैदा हुआ? और जब अधिकार ही नहीं तो इसे मैं कैसे ग्रहण करूँ?

राजा उलझन में पड़ गया- इतनी विपुल स्वर्ण राशि और कोई भी लेने को तैयार हो ही नहीं रहा। तब वह सेठ से ही बोला- आखिर सारा स्वर्ण तो आपका ही है, आप ही इसे रख लीजिए।

राजन्, मेरे लिए तो ऐसा करना एकदम असंभव है। मैंने तो वस्तु लेकर उसका यथोचित मूल्य चुकाया है- यों ही नहीं दिया है।

तब कान्हड़ खड़ा हुआ और बोला- महाराज, मेरा निवेदन है कि यह स्वर्ण कृपा करके आप ही रख लें।

राजा चौंककर कहने लगा- यह तुमने कैसी बात की कान्हड़ कि राजा होकर मैं ही अन्याय और अधर्म पर उतर आऊँ और स्वर्ण स्वयं रख लूँ? किसी धन का कोई स्वामी न हो, वह राज्य के पास रहे, यह तो नियमोचित है। किन्तु जब यह सर्वथा सिद्ध हो चुका है कि तुम ही इस स्वर्ण के स्वामी हो तो इसे रखकर मैं कदापि पाप का भागी नहीं बनूंगा। इसलिए मैं तुम्हें ही कहना चाहता हूँ कि सारे विवाद को छोड़कर तुम ही अपना यह सारा स्वर्ण सम्हालो।

तभी उद्यान रक्षक ने आकर राजा को निवेदन किया- महाराज, उद्यान में महामुनि आचार्य धर्मघोष का पर्दापण हुआ है।

शुभ संवाद सुनकर राजा, श्रीपति सेठ, काम लता वेश्या और कान्हड़ कठियारा सभी आचार्य भगवान के दर्शन वन्दन को प्रस्थान कर गए।

आचार्य की सेवा में पहुँचकर स्वर्ण सम्बन्धी सारा वृत्तान्त राजा ने निवेदित किया और प्रश्न किया-

आचार्य प्रवर, यह सारा वृत्तान्त इस सत्य की अनुपम प्रेरणा देता है कि मानव भौतिक पदार्थों के प्रति निःस्पृहता बनाए रखे। मुझे भी निर्णय करने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा है और कठियारे को ही कहना पड़ा है कि स्वर्ण का अधिकारी वही है।

जन समुदाय भी उस वृत्तान्त को सुन रहा था। उसमें से एक प्रबुद्ध जन खड़ा हुआ और निवेदन करने लगा- भगवन्, ऐसी निःस्पृहता एक की नहीं। राजा, सेठ, वेश्या और कठियारा- चारों की निस्पृहता पूर्ण सराहनीय है। परन्तु मेरा एक प्रश्न है कि इन चारों में श्रेष्ठ कौन है?

आचार्य ने फरमाया- देवानुप्रिय, वस्तुतः चारों की नैतिकता, निःस्पृहता एवं निर्लोभता समान रूप से सराहनीय है। चारों ही श्रेष्ठ प्राणी हैं।

तब कान्हड़ ने निवेदन किया- भगवन्, मैं आपके समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

आचार्य बोले- जैसा सुख हो। उस समय कठियारे के साथ शेष ने भी गुरुदेव से दीक्षा ग्रहण की और अपने मनुष्य जन्म को सफल बनाया।

सार- लोभ न हो तो स्वर्ण मिट्टी से अधिक नहीं।

❑ ❑ ❑

हल्की-सी व्यंग्यभरी हँसी

तुंगियापुरी के सेठ मंडूक की पत्नी श्रीमती की विचित्र मनोदशा बनी हुई थी। पति की सारी सम्पदा व्यापारिक घाटे में समाप्त हो गई थी और रूखा-सूखा निर्वाह चलना भी कठिन हो गया था। तब एक भी व्यक्ति संभवतः ऐसा नहीं रह गया था, जो उसके परिवार की कोई सहायता कर सकता हो। भविष्य के विषय में चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया था।

श्रीमती मन ही मन निश्चय करने लगी कि अब ऐसे अभागे और निर्धन पति के साथ जीवन व्यतीत करना निरर्थक है। कोई उपाय किया जाए कि वह अपने मायके में जाकर रहने लगे। उसके पिता सम्पन्न हैं और अपनी इकलौती पुत्री को अपने साथ में रखने में प्रसन्नता का अनुभव ही करेंगे। फिर वह गर्भवती भी है सो भाग्य से यदि उसके पुत्र जन्मा तो भविष्य की आशा भी सुखद हो सकेगी। कुछ भी हो, अब मंडूक के साथ रह पाना

कत्तई संभव नहीं रह गया है।

वह अपने मन को सन्तुलित बना कर अपने पति के पास गई और बोली- पतिदेव, इस तरह गृहस्थी की गाड़ी कैसे चलेगी? कुछ तो सोचिए और सही निर्णय लीजिए।

मंडूक ने कहा- प्रिये, तुम तो देख ही रही हो, सब कुछ करके भी मैं हार गया हूँ। क्या करूँ, यह भी सूझ नहीं पड़ रहा है।

यहाँ जब कोई जुगत बैठ ही नहीं रही है तो कमाने के लिये परदेश जाने का ही निर्णय क्यों नहीं कर लेते हैं?

हाँ, तुम्हारा सुझाव ठीक है। अब परदेश जाकर ही भाग्य को आजमाना चाहिए- मंडूक मान गया।

फिर मंडूक और श्रीमती अपने नगर को छोड़कर धनार्जन के लक्ष्य से निकल पड़े। चलते-चलते मंडूक ने सुझाव दिया कि दोनों श्रीमती के माता-पिता से मिलते चलें क्योंकि उनका नगर समीप आ गया है। श्रीमती ऐसा नहीं चाहती थी, किन्तु प्रकट में कुछ बोली नहीं। भोजन का समय हो गया था, अतः दोनों एक कुएँ की पाटी पर बैठकर चना चबेना करने लगे।

इस बीच अवसर देखकर श्रीमती ने तरकीब से

मंडूक को कुएँ में धक्का दे दिया और जल्दी-जल्दी साथ का सामान समेटकर वह अपने मायके चल दी।

मायके में श्रीमती को अकेली आई देखकर उसके माता-पिता को विस्मय हुआ। पिता बोले- पुत्री, इस बार तुम अकेली कैसे आई हो? जवाँई जी साथ में क्यों नहीं हैं?

श्रीमती साफ झूठ बोल गई- पिताजी, वे धन कमाने के लिए परदेश गये हैं सो मैं आपके साथ रहने के लिए यहाँ आ गई हूँ। फिर आप नाना भी तो बनने वाले हैं।

अरे, यह तो बड़ी खुशी की बात है कि मेरी पुत्री दीर्घकाल तक मेरे साथ में रहेगी- उसके पिता ने सरल भावों के साथ अपनी प्रसन्नता व्यक्त की।

इस प्रकार श्रीमती अपने पति मंडूक को भुलाकर अपने मायके में सुखपूर्वक रहने लगी।

मंडूक को उसके भाग्य ने साथ दिया। वह कुएँ के भीतर गिरकर भी डूबकर मरने से बाल-बाल बच गया। भीतर गिरते समय पानी की सतह पर ही उसे एक सूखा शिलाखंड हाथ आ गया और वह उस पर बैठ गया, किन्तु कुएँ से बाहर निकलने का उसे कोई उपाय दिखाई नहीं दिया। वह सोचने लगा कि कोई कुएँ पर

पानी लेने आए तभी वह उसे बाहर निकालने की प्रार्थना कर सकता है। तब तक तो उसे कुएँ में ठहरकर ही प्रतीक्षा करनी होगी।

और फिर उसके भाग्य ने उसका साथ दिया- बनजारों का एक बहुत बड़ा काफिला उधर से निकला। पानी के लिए कुछ बनजारे कुएँ के पास आए तो मंडूक ने उनसे उसे बाहर निकालने की प्रार्थना की। उन्होंने रस्सा डालकर उसे बाहर निकाला। बनजारा सरदार ने उससे पूछा- भद्र, तुम कौन हो और कुएँ में कैसे गिर पड़े?

श्रीमान्, मैं तुंगियापुरी का निवासी एक वणिक हूँ और पैर फिसल जाने से कुएँ में गिर पड़ा था। आपने मुझे बाहर निकलवा कर मेरे पर असीम उपकार किया है।

नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। किसी की जान बचाना तो किसी भी भले आदमी का कर्त्तव्य होता है। लेकिन तुंगियापुरी से तुम जा कहाँ रहे थे?

मैं धन कमाने के उद्देश्य से परदेश जा रहा हूँ।

किसी खास स्थान पर जाने का कोई पूर्व निश्चय है क्या तुम्हारा?

नहीं, ऐसा कोई पूर्व निश्चय नहीं है। जहाँ भी सुयोग बैठ जाएगा, वहीं काम करने लग जाऊंगा।

तो फिर हमारे काफिले के साथ ही क्यों न चले

चलते हो? बहुत बड़ा व्यापार है हमारा और दूर-दूर की यात्रा हम करते हैं। हमारे पास हिसाब-किताब ढंग से रखने वाला कोई नहीं है। तुम हमारे सहायक बनोगे तो हमारा हिसाब किताब व्यवस्थित हो जाएगा- तुम एक वणिक जो हो- बनजारा सरदार ने प्रस्ताव रखा।

मंडूक को उस समय इससे अधिक क्या चाहिए था? खुशी-खुशी उसने प्रस्ताव स्वीकार कर लिया व काफिले के साथ हो गया।

तदनन्तर मंडूक का भाग्य उसका बराबर साथ देता ही रहा। काफिले के साथ कुछ समय तक वह रहा, फिर एक स्थान पर बस गया और धनोपार्जन करने लगा। उसके सारे प्रयास सफल होते गए और वह धनार्जन करता रहा। करीब बारह वर्षों के व्यापार कार्य से जब उसके पास पर्याप्त धन संचय हो गया तो उसने पुनः तुंगियापुरी लौटने का निश्चय किया। उसने विचार किया कि श्रीमती अपने मायके ही गई होगी, अतः अपने ससुराल होते हुए श्रीमती और उसकी सन्तान को लेकर ही तुंगियापुरी लौटना चाहिए ताकि वहाँ वह अपनी पूर्व प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर सके। उसने निश्चय कर लिया कि कुएँ में उसको गिराकर पत्नी के चली जाने की घटना कभी भी वह अपने मुँह पर नहीं लाएगा ताकि

यह रहस्य सदा के लिए रहस्य ही बना रहे।

मंडूक अपनी विपुल सम्पदा तथा सेवक मंडली के साथ अपने ससुराल पहुँचा। बारह वर्ष बाद जवाँई जी ऐसी सम्पन्नता के साथ आए हैं- यह देखकर सास-ससुर ने उसका जोरदार स्वागत किया, श्रीमती ने भरपूर प्रेम जताया और किशोर पुत्र तो उसके गले ही लिपट गया। हर्षोल्लास के बीच कुछ दिन वहाँ ठहर कर मंडूक अपने परिवार के साथ तुंगियापुरी पहुँचा और नए व्यापार कार्य के साथ वहाँ पुनः प्रतिष्ठित हो गया।

सर्वप्रकार के सुखों में तेजी से व्यतीत होने लगा। पुत्र युवा हुआ और मंडूक ने ठाठबाट से उसका विवाह कर दिया। परन्तु नई बहू क्या आई कि सारे परिवार के सुख में एक तीखा कांटा गड़ गया। वह बड़ी कर्कशा निकली- अकारण ही क्लेश करती रहती और सबको सन्तप्त बनाती। सास के साथ तो उसकी एक पल के लिए भी नहीं बनती, वह यदा-कदा उसे खरी-खोटी सुनाती ही रहती। इकलौते पुत्र पर मंडूक और श्रीमती का अतिशय प्रेम होने के कारण वे उसे अलग भी नहीं कर सकते थे, इसलिए कड़वे घूंट की तरह वे अपनी बहू के कलह को सह लिया करते थे।

मंडूक और श्रीमती चाहे कुएँ वाली दुर्घटना को

भूले हों या न भूले हों, पर दोनों ने यही जताया कि वे उसे भूल चुके हैं। कभी भी दोनों में से किसी ने परोक्ष रूप से भी उसका उल्लेख नहीं किया। दोनों के व्यवहार में पूर्ण स्वाभाविकता आ चुकी थी।

किन्तु एक बार ऐसी बात हो गई कि मंडूक के चेहरे पर हल्की-सी व्यंग्यभरी हँसी उभर ही आई और उससे जो कुछ घटित हुआ वह भयावह ही नहीं, विनाशकारी बन गया।

हुआ यह कि मंडूक दुकान पर पुत्र को छोड़ स्वयं घर पर भोजन करने के लिए आया। श्रीमती भोजन का थाल परोस कर हमेशा की तरह जिमाने के लिए अपने पति के पास बैठी। मंडूक भी हमेशा की तरह भोजन करने लगा। उस दिन किसी छिद्र से कोई तेज सूर्य किरण निकलकर मंडूक के चेहरे पर गिरने लगी। सूर्य ताप का कुछ ऐसा तीखा था कि मंडूक को झुंझलाहट होने लगी। यह देखकर श्रीमती ने उस सूर्य किरण को अपने पल्लू की आड़ में ढक दिया और पति के सामने पंखा झलने लगी।

श्रीमती ने पति के चेहरे का सूर्य किरण से बचाव स्वाभाविक ढंग से ही किया था, उसमें कोई नई बात नहीं थी। किन्तु यकायक मंडूक की स्मृति में कुए

वाली घटना घुमड़ आई और उसके मन मानस में यह विचार समा गया कि एक दिन निर्धन और निरुपयोगी मानकर उस की इसी पत्नी उसे मार देने के लिए कुएँ में क्रूरतापूर्वक धक्का दे दिया था और आज चूंकि वह सम्पन्न और सबका रक्षक है, वही पत्नी पति के चेहरे पर पड़ने वाली जरा-सी धूप को सहन नहीं कर पाई है और उसने पल्लू की ओट देकर पंखा झलना शुरू कर दिया है। इस विचित्रता पर मंडूक के होठ यकायक कुछ कांपे और चेहरे पर हल्की-सी व्यंग्यभरी हंसी उभर आई।

मंडूक की इस हल्की-सी व्यंग्यभरी हँसी को अन्य कोई देख पाया हो या नहीं, पर वह दिखाई दे गई उसकी कलहप्रिया पुत्रवधू को। पुत्रवधू रसोई में थी, मंडूक का मुँह रसोई की ओर था और श्रीमती उसके सामने खड़ी थी। इस स्थिति में उस हँसी को देखकर पुत्रवधु के मन में यह कुविचार उपजा कि उसका श्वसुर जैसे उससे प्रणय-याचना करने का संकेत दे रहा हो। उसने मान लिया कि यह हँसी निश्चय ही उसे अनाचार का आमंत्रण देने वाली है- पिता तुल्य वृद्ध यदि ऐसी कुचेष्टा करता है तो उसे किसी भी दशा में सहन नहीं करना चाहिए। उसने कमर कस ली कि इस हँसी का रहस्य वह जानकर ही रहेगी।

पिता भोजन करके लौटा तो उसने पुत्र को भोजन करने के लिए घर भेज दिया। उसकी पत्नी उसे भोजन कराने बैठी। तब उसने हँसी का विषय छेड़ ही दिया- देखो जी, मुझे तुम्हारे पिताजी का चरित्र अच्छा नहीं मालूम होता है।

क्या मूर्खता की बात कर रही हो? मेरे देवता जैसे पिता पर क्या कोई झूठा लांछन लगाना चाहती हो? पुत्र भड़क उठा।

ज्यादा बढ़कर बात न करो। मैं झूठा नहीं, सच्चा लांछन लगा रही हूँ।

क्या बात हो गई? गुस्से से पुत्र ने पूछा तो पत्नी ने उससे भी अधिक गुस्सा दिखाया और कहा- कान खोलकर सुनो- बात नहीं, कांड हो गया है। आज भोजन करते समय तुम्हारे पिताजी ने हँस कर मुझे अश्लील इशारा किया, कारण वे रसोई के सामने बैठे थे और तुम्हारी माता का मुँह रसोई की दूसरी तरफ था। इसी मौके का तुम्हारे वृद्ध पिता ने फायदा उठाने की कुचेष्टा की। मैं तो ऐसी कुचेष्टा को कत्तई सह ही नहीं सकती, लेकिन क्या तुम इसे चुपचाप सह लेना चाहते हो?

पति का चेहरा फक्क हो गया, दबी जुबान से वह बोला- क्या सचमुच ऐसा हुआ है?

कह तो रही हूँ कि ऐसा हुआ है, लेकिन अब मैं चुप बैठने वाली नहीं हूँ। तुम भोजन करते ही दुकान जाओ और अपने पिता से पक्का पूछकर आओ कि वे मुझे देखकर टेढ़ी हँसी क्यों हँसे? जब तक सही बात का पता लगाकर मुझे नहीं बताओगे, तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूंगी। अब तुम मुझे मारना ही चाहो तो तुम जानो- पत्नी ने अन्तिम चुनौती दे डाली।

पति विवश हो गया- अब तो पिता से हर हालत में उनकी हँसी का रहस्य जानना ही होगा, नहीं तो उसकी पत्नी कुछ भी अनर्थ कर बैठेगी।

भोजन करते ही वह सीधा दुकान पहुँचा और पिता को एकान्त में ले जाकर सारी बात बताने लगा। मंडूक हतप्रभ रह गया- उसकी उस हल्की-सी हँसी का क्या आशय था और क्या दुष्ट आशय ले लिया है उसकी कर्कशा पुत्रवधू ने? उसकी स्थिति दुविधामय हो गई। उस हंसी का सही रहस्य प्रकट करे तब भी अनर्थ और न प्रकट करे तो उससे भी बड़ा अनर्थ। प्रकट करने पर उसकी धर्मपत्नी की इज्जत खतरे में पड़ जाएगी और उसकी इज्जत तो पहले ही खतरे में पड़ गई है- पुत्र के सामने ही पुत्रवधू ने उसे दुष्चरित्र सिद्ध करने का कुप्रयास कर दिया है। क्या करे वह? इधर कुआँ, उधर

खाई- किसी एक में तो गिरना ही होगा।

चरित्र पर आक्षेप सह पाने की उसकी क्षमता नहीं थी। उसने पुत्र को दर्द के साथ कुएँ वाली घटना सुना ही दी और बता दिया कि व्यवहार के उस बड़े अन्तर के कारण ही उसके मुँह पर वह हल्की-सी हँसी फूट पड़ी थी। बहू की तरफ तो उसकी दृष्टि ही नहीं गई थी।

पिता की बात से पुत्र सन्तुष्ट हो गया तो अपनी पत्नी को भी सन्तुष्ट करने घर पहुँचा। पत्नी ने सारी बात सुनी तो वह खुशी से पागल हो उठी- इतने दिन तक सास उस पर अपनी अकड़ चलाती रही और वह उसे सहती रही। अब तो उसके हाथ में ऐसा शस्त्र आ गया है, जिस की चोट खाते ही वह चारों खाने चित् हो जाएगी।

कलहप्रिया ऐसी बात को कितनी देर तक पचा सकती है? किसी बात पर सास ने कुछ कहा या नहीं, वह बहू बरस पड़ी- किसी बात पर मुझे कुछ भी मत कहना, वरना मुझसे बुरा और कोई नहीं होगा।

सास को भी हल्का गुस्सा आ गया, बहू व्यर्थ बकवास क्यों कर रही हो? मैंने तुम्हें क्या कहा है?

अरी कहोगी भी किस मुँह से? तुम कैसी हो यह मैं जान गई हूँ।

क्या जान गई हो तुम? क्या मैं आज नई बन गई हूँ?

मत कहलाओ मुझसे अपने कलंक की बात- पति को कुएँ में धक्का देने वाली को मुझ पर अकड़ जमाने का क्या अधिकार है? हाथ नचाकर बहू बोली।

श्रीमती को काटो तो खून नहीं। पच्चीस तीस वर्ष पहले की घटना आज और इस बहू के मुँह से कैसे फूट पड़ी? लेकिन कैसी भी फूटी हो, अब वह दुनिया को मुँह दिखाने लायक नहीं रही। उसकी जिन्दगी की यह कड़वी घटना अब तक गुप्त रही, लेकिन जब यह रहस्य खुल गया है- बहू की जुबान पर चढ़ जाएगा, वह उस का कैसे सामना करेगी? अच्छा यही है कि इससे पहले ही वह अपने आपको इस दुनिया से उठा ले। श्रीमती बहू के प्रतिरोध में एक शब्द भी नहीं बोली और खोई हुई सी ऊपर की मंजिल में अपने कक्ष में चली गई। वहाँ उसने ऊपर के कड़े से एक रस्सा बांधा, उसका फन्दा बनाकर अपने गले में कसा और मौत के झूले पर श्रीमती झूल गई। किसी ने नहीं देखा, किसी ने नहीं जाना।

किन्तु ऐसा कैसे होता? कहने को सारी बात मंडूक ने कह तो दी, किन्तु उसके बाद उसका दिल फटने लगा। पुत्र ने यह बात अपनी पत्नी को बताई ही होगी और उस कर्कशा ने यदि यह ताना श्रीमती को दे मारा तो उसके दिल की क्या दशा हो जाएगी? वह इस

दुष्कल्पना को सह न सका, उठकर सीधा घर पहुँचा। श्रीमती नीचे नहीं दिखाई दी तो उसने पुत्रवधु से उसके लिये पूछा। व्यंग्यपूर्वक हाथ नचाते हुए उसने ऊपर की मंजिल की ओर संकेत कर दिया। दौड़ा-दौड़ा मंडूक ऊपर पहुँचा तो उसकी आंखें फटी की फटी रह गई- रहस्य को उघाड़ देने का दुष्परिणाम उसकी नजर के सामने फैला हुआ पड़ा था। उसके पश्चाताप का कोई पार नहीं रहा। जिस रहस्य को उसने वर्षों तक अपने दिल में दबाये रखा, चरित्र का आपेक्ष सहकर भी वह उसे दबाये ही रखता तो अनर्थ तो न घटता- उसके मन ने कहा- तब भी अनर्थ तो अवश्य घटता पर अब तो जो हो चुका, सो हो चुका- वह भी अब जीवित कैसे रहे? उसने भी फन्दा बनाकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली।

बहुत देर तक घर से पिता नहीं लौटे तो दुकान पर बैठा-बैठा पुत्र आकुल-व्याकुल हो उठा। शंकाओं के जाल में उलझ कर उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। दुकान बढ़ाकर वह घर पहुँचा और अपनी पत्नी से पूछने लगा- पिताजी कहाँ हैं?

व्यंग्य से मुंह टेढ़ा करते हुए वह बोली- बड़ी देर से दोनों पति-पत्नी ऊपर बैठे-बैठे गुरमुट कर रहे हैं

और क्या करेंगे, मेरी निन्दा ही कर रहे होंगे।

दौड़कर पुत्र ऊपर पहुँचा और वहाँ जो उसने दारुण दृश्य देखा- पीड़ा से वह पागल हो उठा। वह सब समझ गया कि माता और पिता का ऐसा क्रूर अन्त क्यों आया है? उसका मन उसे धिक्कार उठा- इन हत्याओं का जिम्मेदार केवल वही है। उसकी बुद्धिहीनता की कीमत आज उसे अपने माता-पिता के प्रगाढ़ स्नेह से चुकानी पड़ी है- न वह अपनी कर्कशा पत्नी की हठ पूरी करने की जिद करता, न पिता उसकी माता का रहस्य उसके सामने खोलते और न वह अपने माता-पिता को यों गंवाता। अब उसके सामने कोई उपाय नहीं था, सिवाय इसके कि वह भी उन्हीं के रास्ते पर आगे बढ़कर अपनी बुद्धिहीनता का प्रायश्चित कर ले। उस ने भी गले में फांसी का फन्दा फंसाया और अपने जीवन का अन्त कर लिया।

बहुत देर हो गई, तीनों में से कोई भी नीचे नहीं उतरा तो बहू बुरी तरह से झल्ला उठी- तीनों को उसकी निन्दा से फुर्सत ही नहीं मिल रही है। धड़धड़ाती हुई वह ऊपर पहुँची और तीनों के लटकते हुए शरीरों को देखा तो सचमुच ही वह पागल हो उठी। पागलों की तरह कभी एक शरीर की धड़कन देखती तो कभी दूसरे शरीर

के पाँवों में सिर रखकर धाड़ मारकर रो उठती। कभी बड़बड़ाती हुई खुद को ही गालियाँ देती तो कभी अपने पाप के लिए जोर-जोर से माफी मांगती। उसी विक्षिप्त मनोदशा में उसने भी गले में रस्सी डालकर अपना प्राणान्त कर लिया।

रहस्य-रहस्य ही रहे और न खोला जाए- यही श्रेयस्कर होता है।

सार- रहस्य को उघाड़ना पापपूर्ण होता है।

❑ ❑ ❑

मृत्युः रत्नों के ढेर पर

कलिंगदेश की पदमपुरी नगरी का वह एक धन कुबेर था, किन्तु वह था अत्यन्त ही कृपण। उसका नाम था सागरचन्द्र। विशाल धनराशि का स्वामी होते हुए भी उसे हर समय और धन प्राप्त करने की हाय-हाय लगी रहती थी। उसकी रुचि केवल धन संचय में थी, उसके व्यय में नहीं, वह खुद फटेहाल रहता, रूखा-सूखा खाकर धन बचाता और चाहता कि उसके चारों पुत्र एवं चारों पुत्रवधुएँ भी उसी कंजूसी से रहें और धन संचय को बढ़ाते रहें। किसी को अच्छा खाते या पहनते देखकर उसका क्रोध भड़क उठता था। इस कारण सारा परिवार उससे दुःखी था।

सागर स्वयं सोचता और अपने सोच को सबके सामने बार-बार प्रकट करता रहता- मैंने अकृत-कुकृत के द्वारा एक-एक पाई करके इतना धन संचय किया है, उस के सद्व्यय-अपव्यय की तो बात छोड़िये, मैं उसका

व्यय भी देख नहीं सकता हूँ- तनिक से उसके व्यय से भी मुझे अपार कष्ट पहुँचता है, इसलिये सब परिवार वाले उसे इस रूप में कत्तई कष्ट न पहुँचाएँ।

इस प्रकार सारा परिवार उसके व्यवहार से भीषण कष्ट का अनुभव करता था। चारों पुत्र वधुएँ विशेष रूप से दुःखी थीं। न अच्छा खाना, न अच्छा पहनना और न कहीं आना-जाना- घर में बन्द रहते हुए उनका दम घुटता था। सुकृत करने में भी उनकी विशिष्ट रुचि थी, परन्तु जब श्वसुर की छत्रछाया में व्यय ही दुष्कर था तब सुकृत में व्यय कर पाना उनके लिए संभव ही कहाँ था? उन्हें सदा यह भय भी बना रहता था कि ध्यान रखते-रखते भी कभी किसी व्यय से उनके श्वसुर को कहीं मरणान्तक कष्ट न पहुँच जाए, नहीं तो वृद्ध की मृत्यु का दोष उन पर आ जाएगा। न चाहते हुए भी उनके मन में यह अज्ञात इच्छा उमड़ती-घुमड़ती रहती थी कि कब यह वृद्ध मरे और वे सुख से रह सकें।

एक बार सागर सेठ व्यापार के किसी कार्य से बाहर गाँव गया हुआ था, उस समय एक तापस अपनी दीर्घ तपस्या के पारणे के निमित्त से भिक्षा हेतु उनके घर पर आ गया। बहुओं ने विचार किया कि श्वसुर की अनुपस्थिति में क्यों न पुण्यार्जन का यह कार्य उत्साहपूर्वक

कर लिया जाए? उन्होंने तापस को आदरपूर्वक बिठाया और उसके लिए खीर पूड़ी का भोजन तैयार किया। उसे आस्थापूर्वक भोजन करा कर दान दक्षिणा दी और तब संकोचपूर्वक उन्होंने कहा- हमारे श्वसुर अब आते ही होंगे, अत: कृपा करके अब आप पधारें। आपको यहाँ देखकर वे कुपित हो उठेंगे- कहीं आपका अपमान न कर बैठें। हम उनकी कृपणता से बहुत दु:खी हैं- कहीं आ-जा भी नहीं सकती हैं।

तापस ने बहुओं की सारी दु:ख गाथा सुनी और उसने पसीज कर कहा- तुम दु:खी मत होओ। मैं तुम्हारे मनोरंजन के लिए एक साधन सुलभ कर देता हूँ, जिसकी सहायता से तुम इच्छित स्थानों पर नितप्रति भ्रमण कर सकोगी और तुम्हारे श्वसुर को उसकी कोई जानकारी नहीं होगी।

वह क्या साधन है? अवश्य दीजिए, हम आपकी ऋणी रहेंगी- चारों बहुओं ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

स्वाधीनता का सुख भोग करने के लिए मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूँ। इस मंत्र को गिनकर जब तुम चारों किसी काष्ठ फलक (लकड़े के लठ्ठा) पर बैठोगी तो वह काष्ठ फलक आकाश में उड़ने लगेगा और तुम्हें अपने सुदूरतम इच्छित स्थान तक भी पहुँचा देगा।

इच्छानुसार भ्रमण करके जब तुम पुन: मंत्र गिनकर उस पर सवार होओगी तो वह तुम्हें अपने स्थान पर ले आएगा- यह कहकर तापस ने उन चारों बहुओं को वह मंत्र कंठस्थ करा दिया।

मंत्र प्रदान करके तापस जाने ही वाला था कि सागर सेठ का आना हो गया। यह जानकर कि तापस को खीर पूड़ी का भोजन कराया गया है, वह क्रोध से पागल हो उठा और सबको फटकराने लगा- तुम क्या जानो कि धन कितनी कठिनाई से कमाया जाता है किन्तु उसकी इस तरह की बर्बादी करने के लिए तुम आगे आ जाती हो। ऐसे मंगते भिखारी तो हजारों घूमते फिरते हैं, करलो सब को इकट्ठे, खिलाओ खीर पूड़ी और श्वसुर के कमाए धन पर करो अपने लिए पुण्य का अर्जन- तुम्हें क्या कष्ट होता है? मेरे तो ऐसी बर्बादी पर प्राण ही निकल जाते हैं। यह इस भिखारी को तुमने खीर पूड़ी का भोजन खिलाया है, तो इस घाटे को पूरा करने के लिए अब मैं तीन दिन तक खाना नहीं खाऊंगा। अब तुम्हें भी शर्म हो तो तीन दिन तक घर में खाना मत बनाना। सागर सेठ घण्टों तक पागलों की तरह बड़बड़ाता रहा।

चारों बहुएँ अपने श्वसुर का यह नाटक देखकर चौंकी, चौंकती रही और मन ही मन भारी पश्चाताप

करती रही, लेकिन तापस ने उनकी स्वाधीनता का जो द्वार खोल दिया था, उस द्वार से बाहर निकलकर प्रतिदिन स्वाधीनता का सुख भोगने का उन्होंने पक्का निश्चय कर लिया।

एक विशाल काष्ठ फलक का उन्होंने प्रबन्ध किया, जिस पर चारों आसानी से बैठ सकें। भार अधिक न हो और उड़ने की गति में तीव्रता रहे- इस दृष्टि से उस फलक को उन्होंने भीतर से पोला करवाया। फिर एक दिन चारों बहुएँ प्रदत्त मंत्र का पाठ करके उस काष्ठ फलक पर आसीन हो गई। वह फलक वेगपूर्वक भूमि से ऊपर उठा और आकाश में ऊँचाई पर उड़ने लगा। पहली बार स्वतंत्र वायु का आस्वाद पाकर चारों बहुओं का मन मयूर नाच उठा। वे प्रकृति के रमणीय दृश्यों का अवलोकन करके निहाल हो गई। तभी उनकी दृष्टि नीचे एक सुन्दर द्वीप पर पड़ी, उनकी इच्छा उस द्वीप पर विहार करने की हुई और उन्होंने अपने काष्ठ फलक को वहीं उतार लिया। जी भर उन्होंने वहाँ चारों ओर विचरण किया और विलम्ब न हो जाए इस भय से वे पुनः अपने फलक पर सवार होकर घर लौट आई।

अब प्रतिदिन भ्रमण पर उड़कर जाने-आने का उनका क्रम ही बन गया। पिछली रात को वे प्रस्थान

करती और सूर्योदय से पूर्व लौट आती, जिससे उनके भ्रमण की बात कोई नहीं जान पाता। विशेष रूप से उनके श्वसुर को कुछ भी ज्ञात नहीं होता।

लेकिन एक दिन यह बात सेठ से अज्ञानहीं नहीं। किसी कारण सागरसेठ की नींद बहुत जल्दी खुल गई। वह उठा और इधर-उधर घूमने लगा- कहीं उसकी एक भी बहू नहीं दिखाई दी। वह आश्चर्य करने लगा कि इतनी जल्दी सभी बहुएँ घर से कहाँ गायब हो गई हैं? वह छिपकर एकान्त में बैठ गया ताकि जान सके कि उसकी बहुएँ कहाँ गई हैं और कब लौटती हैं? यथासमय काष्ठ फलक आकाश मार्ग से नीचे आया, उस पर से चारों बहुएँ उतरी और दबे पाँव घर के भीतर चली गई। वह अवाक् देखता रहा लेकिन जान कुछ भी नहीं सका कि वे एक साथ कहाँ गई थी? काष्ठ फलक की क्रिया देखकर तो वह जड़ीभूत ही हो गया। इस अद्‌भुत रहस्य का तो उसे पता लगाना ही होगा- न जाने ये कहीं जाकर उसकी प्रतिष्ठा के साथ खिलवाड़ तो नहीं कर रही हैं? और यह जादूभरा काष्ठ फलक उनको किसने दिया है? इस पर बैठकर वे कहाँ जाती हैं, क्या करती हैं, यह सब जानने के लिए उसका मन बेचैन हो उठा।

लोभी व्यक्ति मायावी और धूर्त तो होता ही है।

सागर को यह ज्ञात नहीं था कि वे रात को किस समय काष्ठ फलक पर बैठकर उड़ती हैं, इस कारण रात को जब सब सो गए तो वह उस काष्ठ फलक की भीतरी पोल में घुसकर बैठ गया और रात भर लालची और कुटिल सोच के ताने-बाने बुनता रहा।

हमेशा की तरह समय पर चारों बहुएँ आई और काष्ठ फलक पर आसीन होकर आकाश में उड़ चली। उस दिन उन चारों ने रत्नद्वीप पर उतरकर उसके दूरस्थ क्षेत्रों में भ्रमण करने का निश्चय किया। अत: नीचे उतरते ही वे तेज कदमों से द्वीप के दूर भाग में निकल गई क्योंकि उन्हें समय पर लौटने की पूरी सतर्कता थी।

बहुएँ दूर निकली और श्वसुर काष्ठ फलक की पोल से बाहर आया। एक दृष्टि उसने चारों ओर घुमाई और उसकी आँखें रत्नों की चमक से चुंधिया गई- चारों ओर अमूल्य रत्नों के ढेर ही ढेर ही लगे हुए थे, जिनके अद्‌भुत प्रकाश से सारा रत्नद्वीप जगमगा रहा था। उन रत्नों को देखकर वह सब कुछ भूल गया- यह गुप्तचरी भी की कि उसकी बहुएँ द्वीप के दूर भाग में क्यों गई हैं और कहीं वे कोई कलंकित कार्य तो नहीं कर रही?

कुछ क्षण उस अनुपम दृश्य को वह ठिठक कर देखता रहा, किन्तु शीघ्र ही वह संभल गया यह निश्चय

करके कि जितनी अधिकतम मात्रा में हो सके वह उन रत्नों को समेट ले। कैसे और किसमें समेटे वह उन रत्नों को? उसे क्या मालूम था कि उसकी बहुएँ ऐसे समृद्ध प्रदेश में भ्रमण करने आती हैं और अभागी अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं लौटती? अब तो वह प्रतिदिन इसी प्रकार छिपकर आता रहेगा और बड़े-बड़े वस्त्र पट लाकर उनके रत्नों से गट्ठर बांधकर ले जाता रहेगा। कितनी अपार रत्न राशि उसके पास संचित होती रहेगी? कितना वैभवशाली हो जाएगा वह- कुबेर को भी परास्त कर देगा?

किन्तु आज वह क्या करे? वह तो रुमाल भी नहीं रखता- रत्न किसमें बांधे? अपने मन को उसने कड़ा किया और अपने धोती-चादर शरीर पर से उतार लिये- घर जाकर तरकीब से अपने नग्न शरीर को फिर से ढक लेगा। इन वस्त्रों में रत्न भरकर उसने गट्ठर बांध लिए और जल्दी-जल्दी उन्हें काष्ठ फलक की पोल में जमा कर नंगे बदन खुद भी दुबक कर भीतर बैठ गया।

भ्रमण करके चारों बहुएँ लौटी और मंत्र जाप करके काष्ठ फलक के ऊपर बैठ गई। फलक आकाश में उड़ने लगा, लेकिन उसकी गति बहुत धीमी थी। बहुएँ भयभीत होने लगी कि इस गति से तो वे घर पर सूर्योदय

के बहुत देर बाद तक भी नहीं लौट पाएंगी और उनका सारा रहस्य खुल जाएगा। उनके श्वसुर न जाने तब क्या करें- वे भय से आतंकित हो उठी। उन चारों ने सलाह की और नीचे भूमि पर अपनी दृष्टि दौड़ाई कि जहाँ कहीं अच्छा सा काष्ठ फलक दिखाई दे, इस फलक को नीचे उतारकर व वहीं छोड़ कर नये फलक पर आसीन हो जाएँ, ताकि त्वरित वेग से समय पर घर पहुँच सकें। बेचारा सागर उनके इस निर्णय से सर्वथा अनजान नंगा बना भीतर बैठा था और अपनी तृष्णा की वैतरणी में खुशी-खुशी बहा जा रहा था।

अचानक वह काष्ठ फलक भारी होने से धप्प से भूमि पर उतरा, चारों बहुओं ने उसे छोड़कर नए फलक पर सवारी की और दनदनाती हुई फिर से आकाश में उड़ चली। वह नंगा धनकुबेर बाहर निकला, तब तक तो नया काष्ठ फलक आकाश में ऊपर उठ चुका था और सागरसेठ को प्राण बचाने के लाले पड़ गए थे।

सारी लाज शर्म छोड़कर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा- अरी बहुओं ठहरो, मैं तुम्हारा श्वसुर तुम्हें बुला रहा हूँ। यों तुम मुझे छोड़कर न चली जाओ, लौट आओ और मुझे भी साथ लेकर जाओ। मेरी भूल

हुई जो छिपकर काष्ठ फलक में बैठ गया था किन्तु मैंने आकर भी तुम्हारी मूर्खता सुधारी है। तुम उस रत्नद्वीप पर से भी बिना कुछ लिये लौट रही थी, मैंने उन रत्नों से गट्ठर बांध लिए। लौटो, और मेरे साथ इन गट्ठरों को भी ले जाओ। जल्दी वापिस उतरो, मुझे अकेला इस भयानक अटवी में यों छोड़कर न जाओ.....

सागर बुरी तरह चीखने लगा, रोने लगा और निराशा से थर-थर कांपने लगा। बहुओं ने पीछे से वह आवाज सुनी अवश्य, पर वे उस आवाज पर विश्वास न कर सकी। इस भयानक अटवी में उनके श्वसुर भला पहुँच ही कैसे सकते हैं ? अकेले इस डरावनी जगह पर आएँ भी क्यों ? अवश्य ही यह कोई प्रेत-बाधा होनी चाहिए जो उनको संकट में डालने के लिए उनके श्वसुर की आवाज में पुकार रही है। उन्होंने इस कारण उस आवाज को अनसुना कर दिया।

चारों बहुओं का काष्ठ फलक उड़ता रहा, दूर से दूर जाता रहा और सागर हताशा के सागर में डूबकर उसको अवश देखता रहा। उसकी आशा का अन्तिम छोर भी कट गया। कौन इस भयानक अटवी में अब आ सकता है और उसके जीवन को बचा सकता है ?

वह नंग धड़ंग अपने रत्नों के ढेर पर बैठा हुआ

था और धाड़कर मार कर रो रहा था- मैंने जीवन भर दु:ख देखकर और दु:ख देकर विपुल धन राशि संचित की। इस समय भी मेरे अधिकार में यह अमूल्य रत्नों का ढेर है, लेकिन इतनी सारी सम्पदा भी आज मेरे क्या काम की रह गई है ? मेरे पास तो न तन ढ़कने का वस्त्र है और न पेट की आग बुझाने के लिए दो रूखी-सूखी रोटियाँ। एक धनकुबेर की ऐसी भीषण दुरावस्था -अकल्पनीय दुर्दशा।

पश्चात्ताप की आग में जलते हुए वह विलाप करने लगा। धन के लिए मेरी हाय-हाय और तृष्णा ने मुझे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया ? रत्नों के ढेर पर बैठा हुआ आज मैं अकाल मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जिसकी मौत पर रोने वाला कोई नहीं है। एक सम्पन्न समृद्ध सेठ के जीवन का ऐसा दयनीय अन्त, जो नंगा बदन ही नहीं, नंगा मन भी रह गया है ! पापों से बोझिल आत्मा में जागरण की प्रकाश रेखा तक नहीं- इस अकाल मृत्यु के उपरान्त भी कैसा होगा उसका भावी जीवन ? उसके मनस्ताप सन्ताप का कोई पार नहीं था।

❖ ❖ ❖

बहुएँ समय से घर पर पहुँच गई और यथा विधि अपने कामकाज में लग गई, किन्तु थोड़ी ही देर

बाद घर में मचे कोहराम से वे दु:ख भरे आश्चर्य में डूब गई कि उनके श्वसुर घर से गायब हैं और चारों ओर खोज करने के बाद भी उनका कहीं पर कोई पता नहीं चल पाया है। इस तरह दो दिन बीत गए। तभी संवाद मिला कि चतुर्थ ज्ञान के स्वामी आचार्य ज्ञानचन्द्र का वहाँ पर पदार्पण हुआ। चारों पुत्र और वधुएँ उनकी सेवा में पहुँचे। दर्शन वन्दन के बाद निवेदन किया- प्रभु, हमारे पिता सेठ सागर इस समय कहाँ हैं?

देवानुप्रिय, तुम्हारे पिता एक भयानक अरवी में भीषण आर्त्तध्यान के साथ अकाल मृत्यु से काल कवलित हुए और इस समय नरक में हैं- बताकर आचार्य ने सारी कथा सुनादी। चारों बहुएँ हतप्रभ खड़ी रही।

तब आठों प्राणियों ने अपनी सारी सम्पत्ति जन कल्याण में व्यय कर देने का संकल्प स्वीकार किया।

सार- अति लोभ सर्वनाश का कारण होता है।

❑ ❑ ❑

रानी, तुम्हारे पुत्र होगा !

पधारिये मुनिवर, आज हमारा परम सौभाग्य है कि आप भिक्षा हेतु हमारे द्वार पर पधारे- महारानी धारिणी ने आगत मुनि की अभ्यर्थना की और वह उन्हें अपने राजप्रासाद के भीतर ले गई।

मुनि की तेजस्विता देखकर रानी अत्यधिक प्रभावित हो गई और मुनि को अपनी व्यथा बताने का उसका मन हो गया शायद व्यथा के निवारण का कोई उपाय निकल आए। वह विनम्रतापूर्वक बोली- हे मुनिवर, कहने को तो मैं रानी हूँ, परन्तु मेरी व्यथा असह्य है कि मैं एक सामान्य माता के सामान्य सुख से भी वंचित हूँ। राज्य के कोष-कोष्ठागार धन-धान्य से परिपूर्ण हैं, सारी प्रजा भी सुशासन से सुखी है, किन्तु मैं ही हूँ कि नितप्रति नि:सन्तान होने की व्यथा से व्यथित बनी रहती हूँ। कभी-कभी तो ऐसा अनुभव होता है कि माता का गौरव यदि मैं प्राप्त न कर सकी तो क्या मेरा जीवन ही

व्यर्थ नहीं कहलाएगा ? यह कहते-कहते रानी का मुख मंडल विवर्ण हो उठा और उसकी आँखें सजल हो गई।

रानी के व्यथापूर्ण मनोभावों ने मुनि को यत्किंचित् चलायमान कर दिया- ऐसी धर्मपरायणा महिला भी सुखानुभव नहीं करती तो सामान्य रूप से धार्मिक आस्था के प्रति क्या सामान्यजन की अभिरुचि को क्षति नहीं पहुँचती होगी ? यद्यपि सबकुछ इस संसार में कर्मफल के अनुसार घटित होता है, फिर भी सामान्य जन तो इतना सा अनुमान लगाकर ही धर्म से उपेक्षित बन जाते हैं कि धर्म करणी का कोई सुफल प्रकट नहीं होता। मुनि त्यागी और तपस्वी थे किन्तु युवा भी थे, अत: वे रानी का कथन सुनकर कुछ भाव प्रवण हो गए, बोले रानी, सन्तान यदि सांसारिक समृद्धि की प्राप्ति अपने-अपने पुण्य कर्मों के फल के अनुसार ही होती है तो जब तुम्हारे भी शुभ कर्मों का उदय होगा तब तुम भी मनोवांछित फल प्राप्त कर लोगी।

गुरुवर, आपका कथन नितान्त सत्य है, किन्तु ऐसा कब होगा, यह मैं जान लेना चाहती हूँ।

घटना की पूर्व जानकारी से कोई लाभ तो होता नहीं और जब वह घटित होगी तो प्रकट हो ही जाएगी।

देव पहेली न बुझाएँ। मेरे मन में जो घोर व्यथा उमड़-घुमड़ रही है, मैं उसका शतांश ही आपके समक्ष

अभिव्यक्त कर पाई हूँ। उसे कृपा करके आप भी अपने अनुभव में लीजिए और मेरी शान्ति के हित में मुझे उचित आश्वासन दीजिए।

मुनि विचार में पड़ गए- वे कोई भविष्यवक्ता तो थे नहीं और न ही उतने ज्ञानी कि भावी घटना की सुनिश्चितता प्रकट कर देते, लेकिन क्या वे किसी भी रूप में रानी के तप्त हृदय को तनिक शान्ति भी नहीं पहुँचा पाएंगे ? वे सोच ही रहे थे कि रानी पुनः करुण पुकार कर उठी- मुनिवर, मेरी धर्म और धर्मवाहक मुनियों में अतीव आस्था है। मैं मानती हूँ कि मुनि जो कुछ कह देते हैं, वह अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है। क्या आप अपनी इस शिष्या को शुभाशीर्वाद भी नहीं देंगे?

मुनि ने यह सब जैसे सुना ही नहीं, वे तो अपने ही भावों में डूबे हुए थे। किन्तु उनके मुख से अकस्मात् ये शब्द स्वतः निकल पड़े जैसे कि फिसल कर अनजाने में कोई पदार्थ हाथ से छूट जाता है- हे रानी, तुम्हारे पुत्र होगा, मातृत्व से तेरी गोद अवश्य भरेगी।

धारिणी रानी तो इस कथन से कृतकृत्य हो गई और मुनि को निर्दोष भिक्षा प्रदान कर हर्षावेग से सुख मानने लगी। मुनि भिक्षा लेकर अपने स्थविर गुरु के पास अपने स्थान को चले गए। मार्ग में विचार करते रहे कि

ऐसे शब्द उनके मुख से क्योंकर निकल गए, जो साध्वोचित मर्यादा के अनुसार नहीं निकलने चाहिए थे। कहीं भविष्य में उनके ये शब्द सत्य सिद्ध न हुए तो ? किन्तु अब क्या हो सकता था ?

जब मुनि उपाश्रय में प्रविष्ट होकर अपने गुरु के पास पहुँचे तो गुरु ने मीठे उपालंभ के स्वर में पूछ ही लिया- अरे शिष्य, आज भिक्षा लाने में इतना अधिक समय कैसे लगा दिया ?

गुरुदेव, आज मैं महारानी धारिणी के आग्रह से राजप्रासाद में भिक्षा हेतु चला गया था, इसी कारण विलम्ब हो गया- शिष्य ने निवेदन किया।

साधु को तो भिक्षा अपनी गवैषणा और आवश्यकता के अनुसार सारे दोष टालकर लेनी होती है। क्या राजप्रासाद से विशेष भिक्षा ली जाती है जिस में अधिक समय लगता है और झोंपड़ी से सामान्य भिक्षा अल्प समय में ले ली जाती है ?

ऐसा नहीं है गुरुदेव। रानी अपनी कुछ व्यथापूर्ण बात कहने लग गई और मैं उसे सुनने लग गया, इसी कारण अधिक समय हो गया।

क्या थी रानी की ऐसी बात ?

शिष्य ने गुरु को रानी की वह व्यथा-कथा

विस्तार पूर्वक बता दी। तब गुरु ने पूछा- इसके उत्तर में तुमने क्या कहा ?

गुरुदेव, कहना तो नहीं चाहता था, किन्तु मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया कि रानी, तुम्हारे पुत्र होगा। चौंक पड़े गुरुदेव और उन्हें किंचित् रोष भी हो आया, वे बोले- हे शिष्य, तुम एक श्रेष्ठ साधु हो और जानते हो कि एक साधु को निश्चयकारी, सावधकारी भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिए, फिर तुम निश्चयकारी भाषा का प्रयोग कैसे कर बैठे ? और जिस भाषा का तुमने प्रयोग कर दिया, उसके फलवती होने की क्या संभावना है ? तुम्हारे इस अविवेकपूर्ण आचरण से मुझे बहुत दु:ख हो रहा है।

गुरुदेव, मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मुझसे भूल हो गई है।

शिष्य, साधारण भूल का तो मैं तुम्हें प्रायश्चित दे देता, किन्तु यह भूल तो प्रायश्चित से भी सुधरने वाली नहीं है। यदि कालान्तर में रानी के पुत्र नहीं जन्मा तो साधु की इस निश्चयकारी भाषा का क्या अर्थ लिया जाएगा ? क्या यह नहीं कह दिया जाएगा कि साधु का वचन झूठा निकला ? क्या इससे धर्म की हानि नहीं होगी ? सत्य व्रत के आचरण में साधु को अत्यन्त विवेकशील होना चाहिए।

आपका उपालंभ सही है। मुझ से जो हो गया, उसमें अब आप ही कुछ मार्ग बताऐं। बिगड़ी को बनाना अब आपके ही हाथों में है।

धर्म के प्रति जन आस्था को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही होगा, शिष्य ! गुरु ने शिष्य को आश्वस्त किया।

❖ ❖ ❖

आहारादि से निवृत्त हो गुरु एक एकान्त स्थान पर बैठ गए और चिन्तन करने लगे- साधु का वचन सिद्ध होना ही चाहिए, अब क्या किया जाए शिष्य की वचन सिद्धि के लिए ? शिष्य तेजस्वी है और इसके हाथों धर्म और संघ की व्यापक प्रभावना संभव है और मैं तो वृद्ध हो चला हूँ- आज नहीं तो कल मुझे काल धर्म को प्राप्त होना ही है। मैं आजीवन संथारा ग्रहण कर लूं और उसमें निदान करुँ कि मेरे तप-संयम के फलस्वरूप मेरा भावी जन्म रानी धारिणी के गर्भ से हो तभी वचन की सिद्धि संभव हो सकेगी। धर्म भावना एवं श्रद्धा की रक्षा हेतु मुझे यह उपाय करना ही होगा।

इतने में शिष्य वहाँ आ गया, गुरु उसे समझाने लगे अपनी सोची हुई बात-देख शिष्य, मेरा शरीर तो अब जर्जर हो चुका है। मेरे इस उपाय से धर्म की

प्रभावना होगी यों भी और तुम्हारे प्रयासों से भी-तुम तो अभी युवा हो।

गुरुदेव, मेरे वचन के लिए आप अपने संयम, तप को बलि न चढ़ाएँ, इसे मैं अपने लिए कतई उचित नहीं मानता हूँ। यदि ऐसा करना ही है तो यह मैं करूंगा, आप नहीं। आपकी छत्रछाया में तो सारे संघ का कल्याण निहित है। मेरी भूल का प्रायश्चित मुझे ही करना चाहिए। आप मुझे ही संथारे का प्रत्याख्यान करादें, मैं निदान करके रानी धारिणी की कुक्षि से उत्पन्न हो जाऊंगा- शिष्य ने स्पष्ट निवेदन कर दिया।

अच्छा वत्स, तुम नहीं मानते हो तो यह कार्य तुम्हीं करो, किन्तु भावी जन्म में अपनी भाषा का पूरा ध्यान रखना, अनुपयुक्त बोलने से न बोलना अधिक श्रेयस्कर होता है।

तहत् गुरुदेव-शिष्य ने संकल्प किया और गुरुदेव से संथारा ग्रहण करके ध्यान में समाधि लगा ली।

❖ ❖ ❖

महाराजा रिपुमर्दन के आनन्द का पार नहीं रहा यह जानकर कि उनकी रानी धारिणी ने गर्भ धारण किया है। जन-जन के हृदय में भी प्रसन्नता का संचार होने लगा। रानी के अन्तर्हृदय का तो कहना ही क्या ? सन्तान

के सुख की उसकी कामना सफल होने वाली थी किन्तु उसकी धर्म भावना तो फल देने भी लग गई थी। गर्भ के कुक्षि में आते ही उसका मन मानस शुभ वृत्तियों से ओत-प्रोत बन गया- ये शुभ संकल्प उठने लगे कि वह दु:खी जीवों पर दया करे, संकटग्रस्त जीवों को अभयदान दे, जनहित की ओर अधिकाधिक ध्यान लगाए, साधु मुनिराजों के दर्शन कर पवित्रता ग्रहण करे, धर्म की सतत् प्रभावना में लगे आदि। एक और विशेषता रानी के अनुभव में यह आई कि ज्यों-ज्यों गर्भस्थ जीव वृद्धि पाने लगा, त्यों-त्यों उसे हित- मित भाषण प्रिय लगने लगा। वह कम से कम बोलती।

गर्भकाल पूरा होने पर रानी ने एक स्वस्थ एवं सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। इस अवसर पर सारे राज्य में चारों ओर हर्षोल्लास प्रसारित हो गया। राजकुमार का जन्मोत्सव मनाया गया और जो भी राजकुमार को देखता उसके आकर्षक एवं प्रियकारी व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। उसके इस विशिष्ट गुण को ध्यान में रखकर राजकुमार का नाम प्रियदर्शी रख दिया गया।

राजा गुरुदेव की सेवा में पहुँचा और निवेदन करने लगा- भगवन्, आपके और आपके गुणी शिष्य के पुण्य प्रताप से ही मेरे यहाँ राजकुमार का जन्म हुआ है।

कृपया राजप्रासाद में पधारकर मेरी रानी एवं नवजात पुत्र को दर्शन तथा मंगल प्रदानकर उपकृत करें।

धर्म प्रभावना की दृष्टि से गुरु ने हर्ष का अनुभव किया और राजकुमार यानी अपने शिष्य को दर्शन-मंगल प्रदान करने वे राजप्रासाद में पहुँचे। उन्होंने अपनी गहरी दृष्टि से नवजात बालक की आँखों में झाँका और उन्हें विश्वास हो गया।

महारानी बोली- गुरुदेव, आपके शिष्य तो काल धर्म को प्राप्त हो गए किन्तु उनका वचन पूर्ण सत्य सिद्ध हुआ है और मुझे माता का गौरव प्राप्त हो गया है। उनके और आपके शुभाशीर्वाद का ही यह सुफल है। मुझे और इस प्रियदर्शी को मांगलिक फरमावें।

गुरु ने मांगलिक सुनाया और प्रियदर्शी की ओर देखते हुए सांकेतिक भाषा में इस आशय की पुनरावृत्ति की- वत्स, अब पूरा-पूरा ध्यान रखना। कहकर गुरु उपाश्रय को लौट आए।

❖ ❖ ❖

सबके प्यार और आदरभरे हाथों में राजकुमार प्रियदर्शी बड़ा होने लगा। देखते-देखते पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर गया, लेकिन सब विस्मित और चिन्तित थे कि कुमार की जीभ नहीं खुली, वह बोलने नहीं लगा। इतना

सुन्दर सलौना बालक और उसके मुख से भाषा का एक शब्द भी नहीं निकले- यह सबकी चिन्ता का विषय हो गया ? क्या कुमार गूंगा तो नहीं है ? भांति-भांति की चिकित्सा, तांत्रिकता आदि की गई, पर कोई फल नहीं निकला। अबोला ही राजकुमार ग्यारह वर्ष का हो गया।

एक दिन सेवक राजकुमार को घुमाने-क्रीड़ा उद्यान में ले गए। वह वहाँ खेल रहा था तभी एक घटना घट गई। पास में एक सररोवर था और उसके तट पर कई पक्षी विचरण कर रहे थे। अचानक एक पक्षी उड़ा और जोर-जोर से चहकने लगा। कहीं शिकारी छिपा बैठा था, उसने उस पर बाण चलाया और वह आहत होकर सीधा राजकुमार की गोद में आ गिरा। राजकुमार ने सोचा- अगर यह नहीं बोलता (चहकता) तो क्या मरता ? सोच के अनुसार उसके मुँह से ये बोल निकल ही गए- अरे तू क्यों बोला ?

कुमार के मुख से इन शब्दों का निकलना था कि सेवक खुशी से उछल पड़ा। दूसरे सेवक को कुमार का खयाल रखने का कहकर वह राजप्रासाद की ओर दौड़ पड़ा और राजा को निवेदन करने लगा- बधाई हो महाराज, राजकुमार बोल गए हैं। जैसा कि सब समझ रहे थे, वे गूंगे नहीं हैं।

सुनकर राजा अतीव हर्षित हुआ और राजकुमार को बुलावा भेजा। फिर राजा नाना प्रकार से उसे बोलवाने की चेष्टा करने लगा, लेकिन राजकुमार एकदम चुप-एक शब्द भी नहीं बोला। राजा निराश हो गया, किन्तु क्रुद्ध हुआ उस सेवक पर, जिसने शायद पुरस्कार के लोभ में झूठ बोला था। राजा ने उसको झिड़का ही नहीं बल्कि आवेश में झूठ बोलने के लिए मृत्युदण्ड का आदेश दे डाला।

सेवक मृत्युभय से थर-थर कांपने लगा। वह जान रहा था कि उसने सच बोला है, झूठ कतई नहीं और अब कुमार कुछ नहीं बोल रहे इस दण्ड पर भी जबकि वे ना समझ भी नहीं हैं। वह कुमार के सामने गया और रोकर कहने लगा- कुमार, अब आप बोलते क्यों नहीं ? क्या मैंने राजा से झूठ कहा था ? मुझ निपराध को मृत्युदण्ड दिया जा रहा है, अब तो कुछ बोलिए।

राजकुमार सबके सामने जोर से बोल उठा- अरे, तू क्यो बोला ?

इन शब्दों को सुनकर राजा और सभी सभासद हर्षित हो गए कि वास्तव में राजकुमार बोलते हैं और सेवक ने झूठ नहीं कहा। राजा ने तुरन्त मृत्युदण्ड रद्द किया और सेवक को पुरस्कार दिया।

राजा कुमार को लेकर निवास में गए और उसने शुभ संवाद रानी को भी सुनाए। फिर वह कुमार से कहने

लगा- अरे कुमार, तुम जानबूझ कर क्यों नहीं बोलते हो ? क्या हमारे किसी व्यवहार से रुष्ट रहते आए हो ?

प्रियदर्शी को उस समय यह सही लगा कि न बोलने के रहस्य को प्रकट कर देने का उपयुक्त अवसर आ गया है। वह बोला- पूज्यवर, मेरे न बोलने का कारण गूढ़ है। मैंने अनुभव किया है कि बोलने से कई बार हानि उठानी पड़ती है। पक्षी बोला तो मरा और सेवक बोला तो वह भी मर जाता। मैं भी पहले बोला था इसी कारण मुझे यह एक और जन्म धारण करना पड़ा।

क्यों, राजकुमार के रूप में जन्म धारण करने से कोई अहित हो गया ? राजा और रानी दोनों ने आश्चर्य के साथ पूछा।

उस अहित को आप नहीं जान पाएंगे, मैं ही जानता हूँ। माता, आपको याद होगा कि एक मुनि ने आपके एक पुत्र होने की निश्चयात्मक बात कही थी, वही मुनि मैं हूँ- बताकर राजकुमार ने अपने जन्म धारण का पूरा विवरण सुना दिया।

तब राजा-रानी और राजकुमार तीनों वैराग्याभिभूत हो गए।

सार- साधु का सत्यव्रत बड़ा कठोर होता है।

❑ ❑ ❑

मैं चोर हूँ !

एक चोर था। चोरी करना ही उसका काम था। चोरी से ही वह अपना और अपने परिवार का निर्वाह करता था। चोरी के सिवाय उसके पास अर्थोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं था और इस कारण चोरी का दुष्कृत्य छोड़ देने का उसके मन में कोई संकल्प भी नहीं था।

एक दिन वह मार्ग से निकल रहा था तो उसने देखा कि भगवान् महावीर का समवसरण लगा हुआ है तथा वहाँ उनकी धर्मदेशना चल रही है। वह भी समवसरण के बाहर एक कोने में दुबक कर खड़ा हो गया। जीवन सुधार के अच्छे-अच्छे उपदेश उसने सुने, पर वह उनका क्या करता ? उसे तो चोरी करनी ही थी, उसके बिना उसका काम कैसे चलता ?

धर्म देशना समाप्त हुई तो एक मुनि उधर से निकले। उन्होंने उस चोर को देखा जो तब भी तन्मय

मुद्रा में वहाँ खड़ा था। वे पूछ बैठे- भाई, क्या तुमने भगवान् के उपदेश सुने ? वह बोला- हाँ सुने। ऐसा लगा जैसे अमृत की वर्षा हो रही हो। क्या तुमने भी एकाध बूंद अमृत पिया ? मुनि ने उसके हृदय को टटोला। मैं क्या पीता ? मैं चोर हूँ, चोरी छोड़ तो सकता नहीं, फिर वह अमृत मेरे किस काम का ? मुनि ने महसूस किया कि उसका हृदय सरल है। वह पाप भीरु है पर परिस्थिति का मारा है। मुनि ने कहा- तुम्हें विचार करने की आवश्यकता नहीं, यदि कोई कठिनाई हो तो बेहिचक कहो ? मुनि के सुधासिक्त वचन से चोर का दिल द्रवित हो गया। उसने कहा मुने ! मैं क्या कहूँ? मेरे भीतर चोरी करने का भारी दुर्गण है। यद्यपि चोरी करना मेरी लाचारी है तदपि चोरी तो चोरी ही है। जो दुर्गुण ही है। लाचारी से भी की जाए तो उसे सद्गुण की संज्ञा तो दी ही नहीं जा सकती।

ऐसी क्या लाचारी है तुम्हारी ?

मेरे पास जमीन जायदाद भी नहीं है और न ही मेरे पास कोई व्यापार ही है। पर पेट तो साथ लगा हुआ है उसे तो भरना ही पड़ता है।

महाभाग ! दुकान में एक ही तरह का तो माल नहीं होता भिन्न प्रकार के समान होते हैं। चोरी करना

तुम्हारी लाचारी है पर झूठ बोलना तो लाचारी नहीं है। तुम चाहो तो वचन नहीं बोलने की प्रतिज्ञा कर सकते हो।

वह भी चाहता था कि कुछ तो ग्रहण करके ही जाऊँ, उसने सोचा सत्य कथन में कठिनाई तो आ सकती है किन्तु कठिनाई के डर से प्रतिज्ञा नहीं लेना क्या उचित है ? उसने मन को समझाया व प्रतिज्ञा ग्रहण करली।

भगवान् महावीर की वाणी उस चोर को अतीव प्रियकारी और हितकारी लगी थी। वह सोचने लगा- अच्छा होता, काश मैं भी चोरी छोड़ सकता, किन्तु यह मेरी विवशता है। हाँ, जब तक मेरे पास निर्वाह हेतु राशि व सामग्री बची है, तब तक मैं चोरी नहीं करुंगा। फिर जो होगा, देखूंगा।

चोर इस प्रकार अपने पास जो कुछ भी था, उससे अपना काम चलाता रहा। कुछ दिन बीते और वह सब समाप्त हो गया। जब काम चलना एकदम कठिन ही हो गया तो वह विचार में पड़ गया- अब तो चोरी करनी ही होगी- उसके सिवाय मेरे पास कोई उपाय नहीं है। लेकिन चोरी भी अब मुझे विवेकपूर्वक करनी चाहिए। जो सामने आया- उसी घर में घुस कर चोरी करली- अब मैं ऐसा नहीं करुंगा। किसी गरीब को कष्ट नहीं पहुँचाऊंगा। अब से मैं सम्पन्न घरों में ही चोरी करुंगा

और जब ऐसा करना है तो सबसे पहले सर्वाधिक सम्पन्न के यहाँ ही हाथ क्यों न आजमाऊँ ? और यह स्थान राज कोषागार ही हो सकता है। तो बस, आज रात वहीं चोरी के लिए जाऊंगा।

किन्तु वह कठिन चोरी सफल हो, उस के लिए चोर ने पूर्व तैयारी की। किसी बहाने से उधर जाकर तालों आदि की जाँच पड़ताल की, वैसी ही दूसरी चाबियाँ तैयार करवाई। फिर एक सम्पन्न श्रेष्ठि की वेशभूषा धारण कर चाबियों का गुच्छा हाथ में लिया और उसे हाथ में घुमाता हुआ रात को वह निकल पड़ा राजपथ पर राजकीय कोषागार की दिशा में।

❖ ❖ ❖

क्यों अभय, राजगृही की प्रजा का हालचाल कैसा है ? महाराजा श्रेणिक ने अपने महामंत्री को पूछा।

महाराज, सब ओर अमन चैन है। सारी प्रजा खुशहाल है- अभय ने कहा।

ऐसा किस आधार पर तुम कहते हो ?

यह तो राज्य संचालन का आधार है, राजन्। नीचे से ऊपर तक सारे संवाद मुझे पहुँचते हैं और सब बातों की जानकारी मेरे पास रहती है। मेरे निवेदन करने का वही आधार है।

अभय, कहा जाता है कि सुनी हुई तो ठीक, किन्तु देखी हुई बात भी कभी-कभी झूठ निकल आती है। फिर केवल सुनी हुई बात के विश्वास तक ही क्या हमें ठहरे रहना चाहिए ?

मैं आपका अभिप्राय समझा नहीं।

मेरा मानना है कि प्रजा के हाल चाल एक प्रजा हितैषी राजा को गुप्त रीति से स्वयं अपनी आँखों से भी देखते रहना चाहिए ताकि उसका यथार्थ से आमना-सामना हो सके।

यह तो प्रजावत्सल राजा का परम कर्त्तव्य है महाराज!

इसीलिए आज मेरी इच्छा हो रही है अभय, कि रात्रिकाल में पूरे नगर में वेश बदल कर भ्रमण किया जाए और प्रजा की वास्तविक स्थिति का ज्ञान किया जाए। तुम्हें भी आज मेरे साथ चलना है।

यह तो बहुत अच्छी बात है, राजन् ! मैं अवश्य श्रीमान् के साथ चलूंगा।

अर्द्धरात्रि के समय वेश बदल कर महराजा श्रेणिक और महामंत्री अभय दोनों नगर में भ्रमण हेतु निकले। दूर से उनके सामने एक काली छाया आती हुई दिखाई दी तो अभय ने ललकारती सी बोली में पूछा- कौन होगा?

आवाज से चोर ने अनुभव किया कि पूछने वाला मात्र रक्षक दल का सदस्य ही नहीं है। बोली में जो रौब है, वह बताता है कि यह अवश्य कोई उच्च पदस्थ है। फिर उसने देखा- सामने आ रहे व्यक्ति दो हैं। उसे खयाल आया- शायद महाराजा और महामंत्री ही हो- कभी-कभी प्रजा का सुख-दु:ख जानने के लिए वे नगर में वेश बदल कर रात्रि को घूमते हैं।

चोर के सामने टेढ़ी समस्या आ खड़ी हुई। उसे चोरी भी करनी है और झूठ भी नहीं बोलना है, किन्तु क्या वह ऐसा कर सकेगा स्वयं महाराजा और महामंत्री के सामने ? पुकारने के बाद वह वापिस भी नहीं लौट सकता था और किसी भी दशा में अपनी प्रतिज्ञा को भी वह भंग नहीं करेगा। उसने अपनी झिझक दूर की और परिस्थिति का साहसपूर्वक सामना करने के लिए तुरन्त तैयार हो गया।

विपरीत दिशाओं में चलते हुए दोनों करीब-करीब आमने-सामने आ गए। चोर को मन में स्पष्ट हो गया कि ये दोनों महाराजा और महामंत्री ही हैं। उन दोनों ने भी देखा कि यह तो कोई सेठ-साहूकार दिखाई देता है। फिर भी अभय ने दूसरी बार कड़कते हुए पूछा- तुम कौन हो ?

मैं चोर हूँ- चोर ने बेझिझक कहा।

कहाँ जा रहे हो ?

चोरी करने जा रहा हूँ।

कहाँ करोगे चोरी ?

राजा के कोषागार में।

उत्तर सुनकर दोनों एक-दूसरे से कुछ फुसफुसाए और मन ही मन हँस पड़े। इस सेठ के मस्तक का कोई पुर्जा ढीला हो गया लगता है, सो अनर्गल बकवास कर रहा है। क्या जो वाकई चोर होगा, इस तरह के उत्तर देगा ? वह तो सब कुछ इस कलाकारी से छिपाना चाहेगा कि कोई उस पर चोर होने का तनिक भी संदेह न कर ले। वे दोनों चोर के पास से मुस्कुराते हुए आगे निकल गए।

और चोर चलता रहा अपनी राह पर अपने गंतव्य की ओर। वह मानसिक रूप से अपनी प्रतिज्ञा पर अटल था कि चाहे जो हो, वह झूठ कदापि न बोलेगा। पूछी हुई प्रत्येक बात का एकदम सत्य उत्तर ही देगा।

चोर सीधा राजप्रासाद के द्वार पर पहुँच गया और भीतर प्रवेश करने लगा प्रहरी ने पूछा- कौन है? यह तो मैं चोर हूँ। सेठ बने चोर ने साफ जबाब दिया। प्रहरी उलझन में पड़ गया। भला क्या कोई- चोर अपने

को चोर बताकर इतने धड़ल्ले से राजप्रासाद के द्वार में प्रवेश करने की हिम्मत करेगा ? लगता है, यह चोर तो है ही नहीं। हाँ, महाराजा भी कभी-कभी वेश बदल रात्रि में घूमने निकलते हैं, कहीं वे ही न हों- अथवा और उनका कोई अधिकारी ही हो- रोकना उचित नहीं है। प्रहरी कुछ न बोला और चोर राजप्रासाद के भीतर चला गया।

वह सीधा कोषागार के सामने पहुँचे गया। चाबियाँ उसके पास थी ही दनादन ताले खोले। भीतर वह देखता ही रह गया-कितनी अपार सम्पत्ति एकत्रित थी ? उसने अधिक लालच नहीं किया और बहुमूल्य हीरों के दो डिब्बे ले जाने के लिए चुन लिए, यह सोचकर कि इनके मूल्य से उसका जीवन पर्यन्त निर्वाह हो जाएगा। इसके बाद उसे कोई चोरी नहीं करनी पड़ेगी।

चोर ने डिब्बे एक थैले में भरे, थैलों को बगल में दबाया, सारे ताले पहले की तरह जड़े और वह निडरतापूर्वक बाहर निकल गया। अभी वह मुख्य मार्ग पर थोड़ी दूर ही था कि महाराजा और महामंत्री से सामना हो गया। इस बार महाराजा ने पूछा-कौन है ?

चोर ने बिना किसी हिचकिचाहट के उत्तर दिया- अभी कुछ समय पूर्व ही तो मैं आपको अपना

परिचय दे चुका हूँ कि मैं चोर हूँ और कुछ पूछना हो तो पूछिए।

दोनों पहचान गए अभी-अभी मिले सिरफिरे सेठ को और यह समझ बैठे कि वह चोर नहीं है। फिर विनोदपूर्ण स्वर में पूछने लगे- अच्छा, तुम अभी कहाँ गए थे?

मैं राजा के कोषागार में चोरी करने आया था- वह बोला।

तो तुम इतना खतरा उठाकर ऐसे स्थान पर चोरी करने क्यों गए? कहीं छोटे-मोटे घर में चले जाते तो पकड़े जाने का खतरा तो न रहता।

आप सही कह रहे हैं, परन्तु छोटे-मोटे घर में चोरी करने से किसी गरीब को भारी कष्ट होता और उससे मैं दु:ख का अनुभव करता। राजा के यहाँ चोरी करने से न राजा को कोई कष्ट और न मुझे किसी दु:ख का अनुभव।

तब तो तुम विचित्र चोर हो जो दयालु भी हो और सत्यवादी भी हो। तुमने हमारा अच्छा मनोरंजन किया।

यह तो आपकी गुण ग्राहकता है, श्रीमान् !

महाराजा और महामंत्री हँसते-हँसते दोहरे होने लगे तथा हँसी के बीच ही फिर पूछ बैठे- क्यों भाई,

कर पाए कोई चोरी राजा के कोषागार में ?

क्यों नहीं ? मेरा वार कभी खाली नहीं जाता। मेरा जीवन भर निर्वाह चल सके उतने हीरे चुरा लाया हूँ। हाँ, मैंने माल उठाने में कोई लालच नहीं किया।

यह सुनकर तो दोनों हँसी से लोट-पोट हो गए- क्या मजेदार चोर मिला है ? क्या पुर्जा ढीला हुआ है कि इसने अपनी सारी रात की थकान ही दूर करदी है।

अच्छा, अपने घर जाओ चोर महाशय। आज खूब रही।

दोनों राजप्रासाद के भीतर चले गए और चोर हीरे लेकर अपने घर पहुँच गया।

❖ ❖ ❖

महाराज की जय हो। आज रात गजब हो गया- कोषागार में चोरी हो गई। चोर की कुशलता यह कि ताले सब यथावत् लगे हुए हैं परन्तु भीतर से हीरों के सिर्फ चार डिब्बे ही गायब हैं और सब वैसा का वैसा रखा हुआ है- कोषपाल ने प्रात:काल होते ही शीघ्रातिशीघ्र महाराजा की सेवा में चोरी का संवाद प्रस्तुत किया।

श्रेणिक सोच में पड़ गए- क्या वह चोर ही तो नहीं था, जो खुलमखुल्ला अपने को चोर बता रहा था ? लेकिन वह राजप्रासाद में प्रवेश कैसे कर गया ?

उन्होंने प्रहरी को बुलाने की आज्ञा दी। जब प्रहरी को चोर के विषय में पूछा गया तो वह हाथ जोड़कर बोला- राजन्, मैं अपने स्थान पर पूर्ण सजग एंव सावधान था। किसी को मैंने भीतर प्रवेश नहीं करने दिया। एक सेठ अवश्य आया-गया जो मुझे वेश बदलकर आया हुआ कोई राज्याधिकारी सा प्रतीत हुआ, अत: मैंने उसे रोका टोका नहीं। पूछा तो उसने अपने आपको चोर बताया। उसी से मैं समझ गया कि वह चोर नहीं, राज्याधिकारी ही है।

महाराजा ने प्रहरी को और कुछ नहीं कहा। वे ही चोर से धोखा खा गए तो बेचारे इस प्रहरी में कितनी सी बुद्धि है ? तब उन्हें विश्वास होने लगा कि उस चोर ने धोखा देने का- भुलावे में पटकने का अच्छा तरीका निकाला-बड़ी तेज बुद्धि वाला लगता है। इसके साथ ही सच बोलने वाला भी लगता है- जो उससे पूछा जा रहा था उसका वह बेहिचक उत्तर दे रहा था। यह तो एक गंभीर चोरी है, चोर का शीघ्र पता लगाना ही होगा।

महाराजा महामंत्री की ओर उन्मुख हुए, बोले- अभय, चोर बड़ा तेज निकला, हम दोनों को भी वह भुलावा दे गया। अब बड़ी चतुराई से उसे पकड़ने की व्यवस्था करो।

जो आज्ञा, राजन्- अभय ने चोर को यथासाध्य शीघ्र पकड़वा लेने का महाराजा को आश्वासन दिया।

महामंत्री की आज्ञा से नगर में यह उद्घोषणा कराई गई कि- जिसने राज्य के कोषागार में गत रात्रि को हीरों की चोरी की हो, वह स्वयं ही राजसभा में उपस्थित हो जाए। ऐसा करने से उसे न तो दण्ड की चिन्ता करनी चाहिए और न ही विलम्ब।

नागरिकों में इस उद्घोषणा पर व्यंगात्मक कानाफूसी होने लगी कि महामंत्री का क्या अनोखा विचार है- चोर स्वयं ही राजसभा में पहुँचकर अपने आप को पकड़वाए और चोरी का दण्ड ग्रहण करे। क्या ऐसे भी कभी कोई चोर पकड़ा गया है या कि पकड़ा जा सकेगा ? क्या विनोदपूर्ण कल्पना है कि चोर राजसभा में पहुँच कर कहेगा- मैं ही चोर हूँ ?

उद्घोषक सारे नगर में घूम रहा था और सबको राज्य की घोषणा सुना रहा था। वह उस चोर के घर के सामने भी पहुँचा और वहाँ भी वही घोषणा उसने जोर-जोर से पढ़कर सुनाई।

उस चोर ने भी वह घोषणा सुनी। उसके सत्यवादी मन ने तुरन्त उसको सलाह दी-यह घोषणा सिर्फ तुम्हारे लिए ही है। शीघ्रता से राजसभा में पहुंच जाओ और जो

भी पूछा जाए, उसे एकदम सच-सच बता दो। मुनि ने जो तुम्हें सत्य-भाषण की प्रतिज्ञा कराई थी, आज उसकी परीक्षा तुम्हें देनी होगी। उसने मन की बात तुरन्त मान ली-प्राणपण से उसने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा निभाने का संकल्प किया है तो वह अपने संकल्प को आज भी अवश्य सफल करेगा। वह न झूठ बोला है और न अब भी इंच मात्र झूठ बोलेगा।

इस निश्चय के साथ वह चोर राजसभा में चला गया, बोला- महाराज, कोषागार में चोरी मैंने ही की है और आप सबने पूछा तो सब सच-सच कहा भी है।

तो अब भी सच सच बताओ कि तुमने कोषागार से क्या क्या चुराया?

मैनें सिर्फ हीरों के दो डिब्बे ही चुराये हैं। इतने मेरे लिए पर्याप्त थे।

तुम झूठ बोल रहे हो, डिब्बे चार गायब हैं।

मैने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की है और उसे निभा रहा हूँ। मैनें दो ही डिब्बे लिये। दो डिब्बों के लिए अवश्य कोषपाल झूठ बोल रहा है, मैं नहीं। यदि मैने चार डिब्बे लिए होते तो जैसे दो कह रहा हूँ, वैसे चार कह देता। इतना सा झूठ क्यों बोलता?

श्रेणिक को उसकी बात सही लगी। वे कोषपाल की ओर मुड़े और डांटते हुए कहने लगे-सच-सच

बताओ, चोरी चार डिब्बों की हुई या दो डिब्बों की ? जरा सी भी लाग लपेट की तो कड़ा दण्ड दिया जाएगा।

कोषपाल सारी स्थिति को समझ गया कि उसका झूठ पल भर भी नहीं चलेगा, गिड़गिड़ाता हुआ बोला, मुझे क्षमा कर दें महाराज, मेरी नीयत बिगड़ गई थी कि चोर की बात कभी भी सोच नहीं मानी जाएगी, अतः दो डिब्बों का लाभ मैं भी क्यों न उठा लूं ? मैने ऐसा चोर पहले कभी नहीं देखा।

महाराजा कड़के-तो अब देख लो कि यह कैसा चोर है ? यह चोर होकर भी सत्यवादी है और तुम कोषपाल होकर भी चोर निकले। क्या तुम अपने पद पर बने रहने के योग्य हो ? फिर अभय से बोले- इसे अपने पद से हटा दो और दो डिब्बों की चोरी का कठोरतम दण्ड दो।

फिर उन्होंने चोर को अपने पास बुलाया। उसका साधुवाद करते हुए वे कहने लगे- तुम्हारे सत्यवादिता के एक गुण ने सारे दुर्गुणों को भी गुण बना लिया है। अब तुम चोर नहीं हो। तुम्हें मैं अपना नया कोषपाल नियुक्त करता हूँ।

सार : सत्य सचमुच भगवान् होता है।

❑ ❑ ❑